अप्रैल, 2013

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

संभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.sambhavya.com

संभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

अप्रैल, 2013

संस्थापक

श्री दयानन्द जायसवाल

संरक्षक

डॉ. विजय कुमार सिंह

प्रधान संपादक

डॉ. शीतल अवस्थी

संपादक

डॉ. अश्विनी

डॉ. जी. पी. सिंह

संस्थापक सदस्य

डॉ. राम किशोर शर्मा

श्री उमाकान्त भारती

ई. नन्दलाल यादव ''सारस्वत''

श्रीमती छाया पाण्डेय

श्री महेन्द्र मयंक

श्री रवीन्द्र प्रसाद मोदी

स्थायी सदस्य

श्री अजय कुमार सिंह

श्री धनञ्जय कुमार मण्डल

श्री विनय कुमार

श्री महेश कुमार सिंह

श्री बाल मुकुन्द साह

श्री मनोज कुमार सिन्हा

श्री सत्यदेवेश प्रसाद सिंह

कार्यालय प्रभारी

श्री अनूप किशोर

संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक। रचनाओं के लिए लेखक उत्तरदायी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र भागलपुर।

सहयोग - 15/-

संपर्क : Sri Dayanad Jayswal

Murya Jubli Place, Zero Mile, Bhagalpur - 813210 (Bihar)

Mob. : 9931240303, 9570838880

Website : www.sambhavya.com | e-mail : dnjaysawal.sambhavya.com

अनुक्रम

1.	पुरोवाक्	-	डॉ. शीतल अवस्थी	03
2.	प्रेम और सौन्दर्य	-	दयानन्द जायसवाल	04
3.	आज की कविता	-	डॉ. जी. पी. सिंह	05
4.	बिहार गौरव	-	डॉ. शाश्वतानन्द झा	06
5.	माँ तुम वेद हो....गीता हो	-	डॉ. अश्विनी	07
6.	यहाँ कुरूक्षेत्र सजा है	-	अभिनव अरूण	08
7.	आत्मसात	-	छाया पाण्डेय	08
8.	अनुबंध	-	रंजना जायसवाल	09
9.	सोचा है कभी	-	रंजना जायसवाल	09
10.	न रूकुँगी...न हारूँगी...	-	डॉ. राधाकृष्ण सहाय	10
11.	एक सावित्री की मौत...	-	डॉ. अमरेन्द्र	14
12.	चार कविताएँ	-	मनिका मोहिनी	17
13.	मुझे मत रोको	-	कुमारी प्रिया	18
14.	गजल	-	बच्चू चौधरी 'अकेला'	18
15.	नारी और समाज	-	संयुक्ता गुप्ता	19
16.	प्रायश्चित	-	पी. एन. जायसवाल	20
17.	परिचय	-	विष्णु प्रसाद मंडल 'विकल'	22
18.	गजल	-	अशोक मिजाज	23
19.	हाइकू	-	अनंत आलोक	23
20.	माँ मुझे मत मार	-	मोनिका जैन 'पंछी'	24
21.	मेरे सूने आँगन में	-	रोहित पगारे	24
22.	आदमी	-	गिरिजा शंकर मोदी	25
23.	स्वाहा	-	उमाकान्त भारती	26
24.	अजन्मी आवाज	-	शबीना तौकीर	29
25.	क्षणिकाकार	-	प्रो. (डॉ.) शरद नारायण खरे	30
26.	स्वाधीन स्त्री के शब्द	-	कृपा शंकर चौबे	32
27.	सुभाषचंद्र बोस के सपनों का भारत	-	डॉ. रंजन कुमार घोष	33
28.	भीष्म से	-	देवेन्द्र सौरभ	36
29.	हिन्दी भाषा की विकास यात्रा	-	डॉ. दीपक कुमार लाल	37
30.	समाधान	-	डॉ0 आर0 के0 शर्मा	38
31.	महाकवि	-	अशोक कुमार झा	39

संपादकीय

पुरोवाक्

'जागते रहो, जगाते रहो' यशस्वी एवं लोकप्रिय कवि नीरज जी का यह आह्वान अगर अनसुना रह जायगा तो भारत जैसे संस्कृति, सभ्यता एवं साहित्य का समृद्ध यह देश ढह जायगा।

आज देश की दशा एवं दिशा के प्रशस्त करने के संदर्भ में जनतंत्र के चौथे स्तम्भ के लिए यह आह्वान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

'संभाव्य' का यह अंक इस तथ्य का, इस सत्य का पक्का सबूत है कि संभाव्य परिवार ने इस आह्वान को सुना है और सक्रिय रूप से उस आहवान को मूर्त रूप में सामने रख रहा है।

यह अंक इस तथ्य का भी गवाह है कि इसके लेखक, समीक्षक, प्रशंसक और पाठक सब जगे हुए हैं तथा यह चेतना एवं सजगता इस बात का भी सबूत है कि इस पत्रिका के दीर्घजीवी होने में भ्रम और भय की कोई गुंजाईश नहीं है। इस पत्रिका का नामकरण भी बड़ा सार्थक और निश्चयात्मक है। यह पत्रिका संघर्ष करते हुए और प्रोत्साहित होगी, अपने लक्ष्य को निश्चित रूप से प्राप्त करेगी, जो संभाव्य है।

विश्वग्राम की परिकल्पना में विकास की तेज गति से इस पत्रिका को यह लाभ कई गुणा बढ़कर मिलेगा। इतने शिक्षण संस्थान इतनी तेजी से बढ़ रहे हैं कि इसे पाठकों की कभी कमी नहीं होगी।

आज की तारीख में शिक्षा सम्पन्न वर्ग, ज्ञान के जिज्ञासु वर्ग बढ़ रहे हैं जिससे संभाव्य को सीधे नहीं तो घुमा-फिरा कर अवश्य लाभ मिलेगा।

इस पत्रिका की एक बहुत बड़ी खासियत है कि इतने अच्छे आवरण, इतने पृष्ठ, अच्छा कागज, साफ-सुथरी छपाई इतने तरह का विषय निःशुल्क देती है, अनायास ही सहयोग राशि मिल जाय तो अच्छी बात होगी।

अब लेखकों, समीक्षकों, पाठकों, आदि सबका यह पुनीत कर्त्तव्य है कि अपने सक्रिय सहयोग से इस पत्रिका को अधिक से अधिक आकर्षक, ग्राह्य एवं ज्ञानवर्धक बनावें।

यह पत्रिका भी विश्वग्राम की एक प्रतिष्ठित पहचान है। इसकी पहचान को और भी धवल एवं भव्य बनाना पाठकों बुद्धिजीवियों, शिक्षाविदों एवं समाजसेवकों का पुनीत कर्त्तव्य है।

आशा ही नहीं, विश्वास है कि यह पत्रिका दिनानुदिन संवरेगी, अपने को और भी आकर्षक बनाएगी एवं विषय-वस्तु का विस्तार देगी।

प्रेम और सौन्दर्य

दयानन्द जायसवाल
संस्थापक, संभाव्य

प्रेम सार्वभौमिक, सार्वकालिक, सनातन और नित्यनवीन है। जन्म से मरण तक प्राणी प्रेम को तलाशता रहता है। प्रेम के अभाव में यह जीवन नीरस हो जाता है। प्रेम का मजा चखने के लिए ही आत्मा एक बार फिर अस्थिपिंजर में बन्द होने को राजी हुआ है। बाह्य सौन्दर्य किस काम का, जबकि प्रेम जो आत्मा का भूषण है, हृदय में न हों। प्रेम जीवन का प्राण है। जिसमें प्रेम नहीं, वह केवल श्वांस से घिरी हुई हड्डियों का ढ़ेर है। बाल्यकाल में यह प्रेम माता-पिता तथा नये-नये खिलौनों के लिए उमड़ता है, किशोरावस्था में युवक-युवतियों में पारस्परिक आकर्षण के रूप में प्रकट होता है जो कि दाम्पत्य-सूत्र में बंध जाने पर आजीवन विश्वास के सुदृढ़ बन्धन में परिणत हो जाता है। यहीं तक नहीं, यह शुद्ध भाव-बोध लौकिक सीमाओं का अतिक्रमण कर ईश्वरोन्मुख होकर चरमोत्कर्ष को प्राप्त करता है। यह सृष्टि का चालक भी है और मुक्ति का मंत्र भी। ब्रह्माण्ड की समस्त असीम विराट सत्ता प्रेम-भाव में सिमट जाती है। सचमुच प्रेम ही जीवन है। यह एक ऐसा जटिल मनोवेग है जो सम्पूर्ण विश्व को एकसूत्र में बाँध रखा है।

प्रेम के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसके स्वरूप को एक स्पष्ट रूप देने के लिए विश्लेषक सदैव प्रयत्नशील रहे है। सृष्टि में प्रत्येक प्राणी प्रेम के सरस रूप का अनुभव करता है, परन्तु इस अनुभूति को व्यक्त कर पाना कठिन है। निर्मल प्रेम में आत्मा का अनुभव कराने की विराट शक्ति है, जिससे हमें उस दिशा सत्ता के दर्शन होते हैं जो चराचर जगत के समस्त पदार्थो को स्वयं में समेटे हुए है। स्थूल देखा जाय तो यह प्रकृति का एक धर्म ही जान पड़ता है और इन्द्रियों के माध्यम से प्रकट होता दिखाई देता है। प्रेम के वास्तविक स्वरूप के दर्शन के लिए उसे काम से पृथक करना अनिवार्य है। काम-भावना स्वार्थ की वृत्ति से पूर्ण है, इसके विपरीत प्रेम एक अत्यन्त उदार तथा उदात्त भाग है। इसमें स्वार्थ का कोई स्थान नहीं। सच्चे प्रेम में "तुम और मैं" का कोई स्थान नहीं, जबकि प्रेमी सौन्दर्य का भोगी रहता है, वह अपने को सुन्दर वस्तु से अधिक महत्व देता है। ऐसी स्थिति में उसमें प्रेम पात्र (सुन्दर वस्तु, व्यक्ति आदि) के प्रति समर्पण तथा उत्सर्ग की पवित्र भावनाएँ उदित नहीं हो सकती। इसके विपरीत जब प्रेमी प्रेम पात्र को ही सबकुछ मानने लगता है और स्वयं को तुच्छ और नगण्य समझने लगता है तभी उसमें पूर्ण और उत्सर्ग की सात्विक भावनाओं का संचार होता है। सच्चा प्रेम तो आत्मा के संलिप्त हुए बिना संभव ही नहीं है। जब आत्मा को प्रेम की अनुभूति होती है तो सच्चा प्रेम इन्द्रियों के माध्यम से प्रकट होकर अन्तर्तम को भस्म कर देता है। निर्गुण रूप में तो प्रेम और आत्मा अभिन्न है। प्रेम की इसी अवस्था में परमात्मा के दर्शन होते हैं। जिस अनुपात में प्रेम की यह आह्लादकारी भावना हमारे हृदय में होगी, उसी अनुपात में प्रेम की उच्चता, उदारता तथा औदात्य होगा। प्रेम सहिष्णु है, प्रेम दयालु है, वह ईर्ष्या नहीं करता, अहंकार नहीं करता, आत्मश्लाधा नहीं करता, अभद्र व्यवहार नहीं करता, स्वार्थ नहीं खोजता, झुंझलाता नहीं, बुराई का लेखा नहीं रखता। प्रेम सब बातें सहन करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सच्चे प्रेम में अनन्य भाव है। सच्चा प्रेमी अपने प्रेम पात्र में इस प्रकार डूब जाता है कि वह अहं भाव से रहित होकर सेवा भाव से सराबोर हो जाता है। इसमें प्रेमी केवल अपने प्रेमी का सुख चाहता है। इस प्रेम का सूत्र है, "मैं तुम्हारा हूँ" इसमें सर्वस्व त्याग, उत्सर्ग तथा समर्पण की ध्वनि है।

सौन्दर्य बाहर की कोई वस्तु नहीं है, मन के भीतर की वस्तु है। जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से तदाकार परिणति जितनी ही अधिक होगी, उतनी ही वह वस्तु हमारे लिए सुन्दर कही जायेगी। सौन्दर्य इन्द्रियों द्वारा अनुभूत एक संवेदना है, फिर भी इस वैविध्यपूर्ण संवेदना के विस्तृत अर्थ को समझने के लिए कुछ प्रामाणिक परिभाषाओं का आश्रय लेना उपयोग होगा, "सुन्दर वह है जिसमें चारित्र्य या वैशिष्ट्यमूलक प्रकाश रहता है। वह ऐन्द्रिय या कल्पना रूप में प्रकाशित वस्तुधर्म है। उसे प्रकाशित होने के लिए कोई माध्यम चाहिए। अभिव्यक्ति सौन्दर्य में सार्वजनीय अथवा अमूर्त्त व्यंजनात्मकता सन्निहित होती है। सौन्दर्य एक मानसिक अनुभूति या प्रतीति मात्र है। जिसे हम किसी विशेष परिस्थिति में अनुभव करते हैं। यह आवश्यक नहीं कि कोई वस्तु सदैव मन में आनन्द का अनुभव कराये अथवा सुन्दर प्रतीत हो। जब देखनेवाले का मन किसी वस्तु विशेष में रमण करता है तथा दोनों के अन्तर और बाह्य में सामंजस्य स्थापित हो जाता है तो वह रमणीय हो जाती है।"

साधारणः मनुष्य उसी वस्तु में सौन्दर्य के दर्शन करता है जो उसके लिए उपयोगी हो। अनुपयोगी वस्तु में सौन्दर्य होने पर भी वह उसमें त्रुटियाँ खोजता रहता है। मानसिक रूप से क्लान्त व्यक्ति मन को मानने वाले सौन्दर्य में डूबकर ही अपनी थकान से मुक्ति पा सकता है। हमारे मानसिक स्वास्थ्य पर ही हमारा शरीर निर्भर करता है तथा मन को स्वस्थ रखने के लिए उसकी आवशकताओं को पूर्ण करना आवश्यक है। सौन्दर्य आनन्द को जन्म देता है। अतः यह हमारे मन के लिए अत्यधिक उपयोगी है।

सुन्दर वह है जो अनुरूप एवं योग्य हो तथा अपेक्षित उद्देश्य का उत्तर हो। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि सुडौल वस्तुएँ सुन्दर लग सकती हैं, परन्तु वास्तविक सौन्दर्य तो उस सजीवता के दिव्य प्रकाश में ही है। यह रूपवादी

सौन्दर्य को मानते हुए भी उसमें आन्तरिक तत्त्व खोजते हैं। सौन्दर्य एक भूषण है, एक युक्त गुण है। यह यथार्थता की दृष्टि के मूल तक प्रवेश कर जाता है और इसका संबंध उस आनन्द एवं तृप्ति से है जो हमें उस यथार्थ से प्राप्त होती है। वास्तव में सौन्दर्य, भावों का व्यक्त रूप ही है। कृति श्रेष्ठता लाने हेतु भावों में औचित्य, विशदता, स्थिरता तथा विविधता होना आवश्यक है।

सौन्दर्य तत्त्व के रूप में कल्पना-तत्त्व का महत्त्व सर्वविदित है। अपनी कल्पना के बल पर कलाकार साधारण-सी दिखने वाली वस्तु में भी अलौकिक सौन्दर्य के दर्शन कर सकता है। कल्पना साधारण-सी वस्तु का प्रस्तुतीकरण अत्यन्त ही प्रभावशाली ढंग से करने में सक्षम है परन्तु इसे बुद्धि-तत्व से भिन्न स्तर प्रदान किया गया है। सौन्दर्य के बाह्य पक्ष का निर्धारण शैली-तत्व के आधार पर होता है। कला के भौतिक रूप को प्रस्तुत करनेवाली पद्धति शैली कहलाती है। शैली ही कलाकार के व्यक्तित्व की परिचायक है तथा उसकी रूची को प्रकट करती है। सौन्दर्य अत्यन्त विस्तृत तथा वैविध्यपूर्ण है जिसे नियमों में सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता है, अपितु मनुष्य विधाता की सुन्दर कृति है। यदि सौन्दर्य को दिव्य एवं अलौकिक भी माने तो उसकी अभिव्यक्ति नारी एवं पुरूष के माध्यम से ही हो रही है। सामाजिक विकास में आदिम युग से लेकर अबतक नर-नारी ने अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व द्वारा सौन्दर्य की अभिवृद्धि की है। हालाँकि मनुष्य तथा प्राकृतिक पदार्थ दोनों ही नाशवान हैं, किन्तु उनमें रहनेवाला सौन्दर्य अजर तथा अमर है। प्रत्येक व्यक्ति अपने विवेक के अनुसार सौन्दर्य के मापदण्डों का निर्धारण करता है। यह आवश्यक नहीं कि किसी एक व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करने वाली कोई सुन्दर वस्तु सभी के आकर्षण का केन्द्र हो अथवा कोई वस्तु देखने में सुन्दर न होते हुए भी किसी व्यक्ति विशेष को अपनी ओर आकर्षित न कर पाये। सौन्दर्य तो दर्शक के हृदय में है। कोई सहृदय व्यक्ति प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में सौन्दर्य खोज लेता है तथा परमानन्द अनुभव करता है तो कोई पाषाण-हृदय इस अनुभूति से सर्वथा वंचित रह जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सौन्दर्य वस्तुगत नहीं है, प्रत्युत सहृदय की संवदेना में निहित है और प्रेम केवल एक भावना मात्र नहीं है, वह परमार्थ है, परम सत्य है, ब्रह्म की शुभ्र ज्योति है, इसी के द्वारा हम ब्रह्म-विहार कर सकते हैं। केवल प्रेम रहित व्यक्ति प्रेमोपहार पर भी हानि-लाभ या उपयोगिता के रूप में विचार करते हैं, किन्तु यह प्रेम नहीं है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि यदि प्रेम केवल बाह्य रूपा प्रकृति को देखकर रीझना ही है तो वह कोरी वासना है। प्रेम एक अत्यन्त पवित्र भाव है जो शनैः-शनैः आत्मिक तत्व पा लेता है तथा इस तथ्य में भी कोई संदेह नहीं कि सच्चा प्रेमी ईश्वर के अत्यन्त निकट होता है, क्योंकि आत्मा परमात्मा का ही अंश है।

आज की कविता

डॉ0 जी0 पी0 सिंह
संपादक, संभाव्य

छंदमुक्तता के नाम पर
शब्दों के विकलांग संगठन में
अकाल मौत भाँपती।
'जीने दो' का आर्तनाद कर रही
आज की कविता।

काया-दोहन से स्तब्ध हो
मरू-अंतस में त्रास लेकर
मनुज-मन की अस्त-व्यस्तता को
निकट से प्रतिविंबित करती है
आज की कविता।

छिन्न-भिन्न-डगमग चरण
तादात्म्य-अभाव का नग्न दर्शन।
मानो मानव के अलगाव-भाव का
सुगोचर चित्र अंकित करती है
आज की कविता।

साहित्य-शत्रु के शब्द-मर्दन से
पहचान के अवसान काल में
विचलित और व्याकुल होकर
अपने 'निराला' को ढूँढ़ती है
आज की कविता।

अनिश्चय-भविष्यत से सहमी
पीड़ा और संत्रास झेलती
कवियों की जबर्दस्त भीड़ में
किसी 'अज्ञेय' की तलाश करती है
आज की कविता।

बिहार गौरव-गान

डॉ0 शाश्वतानन्द झा
भागलपुर

तुमसे है एक निवेदन हृदय से सुनो
गान-गौरव कथा इस बिहार की करो$_2$।।

नेक प्रान्त नेक आशावाद है यहाँ।
प्रान्त भक्ति न कोई विवाद है यहाँ।।
सबको आस है यहाँ सबका वास है यहाँ।
गाँधी, राजेन्द्र, कुँवर, जयप्रकाश है यहाँ।

दिल से सौ बार स्वीकार तुम भी करो।
गान-गौरव-कथा इस बिहार की करो$_2$।।

संस्कृति-ज्ञान लेकर लुटाते हैं हम।
धर्म कार्यों में हाथ बँटाते हैं हम।।
प्रेम-पुण्यों की गंगा बहा करके।
बुद्ध, जैन-महावीर को बुलाते हैं हम।।

बस तबीयत से इकरार तुम भी करों$_2$।
गान-गौरव-कथा, इस बिहार की करो$_2$।।

सादगी में हकीकत से जीते हैं हम।
एकता के सखा-सूत्र पीते हैं हम।।
गुरू गोविन्द ईसा मसीह नमकर।
हिन्दु-मुस्लिम को अपना बनाते हैं हम।।

चाहे जितना भी इनकार हमको करो।
गान-गौरव-कथा, इस बिहार की करो$_2$।।

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष में रति हो जहाँ।
भक्ति-भुक्ति-मुक्ति मार्ग के यति हो जहाँ।।
ख्यात नालंदा, विक्रमशिला हो जहाँ।
जानकी जाह्नवी मातृसत्ता जहाँ।।

कोटिशः साथ जयकार तुम भी करो।
गान-गौरव-कथा, इस बिहार की करो$_2$।।

चन्द्रगुप्त मौर्य, कर्ण या अशोक हो महान।
या मगध, मिथिला अंगदेश दर्शन।।
बोधगया, राजगीर है अहिंसापुरी।
'गणतंत्र' में वैशाली का जग-कीर्त्तन।।

बखुदा मुझपे एतबार अब भी करो।
गान-गौरव-कथा, इस बिहार की करो$_2$।।

आर्यभट्ट, बाणभट्ट, वाल्मीकि, अश्वघोष।
ऐतिहासिक धरा शेरशाह सूरी की।।
खाँ खुदाबख्श और सच्चिदानन्द भी।
कंठहार हैं बिहार मान-सम्मान के।।

ज्ञान के साथ गुणगान तब भी करो।
गान-गौरव-कथा, इस बिहार की करो$_2$।

'त्रिमुनि' शब्द-शास्त्र के प्रणेता यहाँ।।
हैं यथा सूत्रकार, भाष्यकार, वार्तिक।।
न्याय-मीमांसा-संख्या-योग याज्ञवल्क्यभू।
स्वयं विद्यापति, मण्डन का धाम है यहाँ।।

मान के साथ ज्ञान-दान तुम भी करो।
गान-गौरव-कथा, इस बिहार की करो$_2$।

रेणु, यात्री, नेपाली, कवि रामकिंकर।
अंग दिनकर के संग शरत्चन्द्र देखना।।
लोक गायक भिखारी का गान सुनकर।
विस्मिल्लाह शहनाई का तान सुनना।।

आओ श्रद्धा से रोज-खोज इनकी करो।
गान-गौरव-कथा, इस बिहार की करो$_2$।

'माँ' तुम वेद हो - गीता हो...

डॉ0 अश्विनी
संपादक, संभाव्य

शास्त्रों का अभिमत है - माँ प्रथम गुरू एवं प्रथम ईश्वर है। वह विराजमान है हर किसी के अस्तित्व में, वह स्थापित है हर किसी के मन मंदिर में और हर किसी के घर आंगन में। तभी तो हम कहते हैं -

माँ, तुम हो तो सब कुछ यहीं है,
तुम नहीं तो कुछ भी नहीं है।
तुम अमृत सी बरसती हो हर पल हर जगह,
तुम नहीं तो नरक भी यहीं है।

माँ तो सुबह की लाली है, जगाती है - आलोकित करती है जीवन-जगत को, माँ तो सावन की सम्पूर्ण अमृत वर्षा है, भिंगोती है धरती से आकाश तक, जड़ से चेतन तक, अंतर से वाहय तक, उन्हें शत-शत नमन एंव वन्दन है।

राम-कृष्ण जो साक्षात ईश्वर परम तेजोभूत परम सौन्दर्य सत्ता विधायक है या फिर भगवत्ता को उपलब्ध बुद्ध, ईशा, गांधी, महावीर, भगत सिंह, सुभाष चन्द्र, मीरा, महादेवी, तुलसी, कबीर, सूर एवं रैदास, सावित्री, फातिमा, मरियम देवियों का अवतरण इस धरती पर 'माँ' के माध्यम से ही हुआ है। इसीलिए 'माँ' की तुलना किसी से भी नहीं की जा सकती है। वह तो परम इष्ट, सत्य-सादगी एवं अखंड सौंदर्यसत्ता सृष्टि को जीवन दृष्टि देती है - पालन पोषण करती है।

धन्य हैं 'माँ' की महिमा एवं गरिमा 'माँ' वेद है गीता, बाईबल और पुराण भी है। 'माँ' घंटिया है मंदिर की, प्रार्थना है गिरिजा की, मस्जिद की अजान भी है। 'माँ' देती है अनंत शाश्वत प्रेम की सीख एवं दुआ, 'माँ' तो अतीत एवं वर्तमान की जीवंत कथा ज्ञान विज्ञान भी है।

प्रकृति, संस्कृति, संस्कार-स्वाभाव संसार, लौकिक-पारलौकिक, आधार-विस्तार, नियम एवं संयम सभी तो 'माँ' का ही संभूत एवं एकीभूत रूप है। हृदय में प्रेम प्रवाह, आंखों में उमड़ता ममता का सागर, आंचल में दूध और पानी का उपहार, गोद में लोरी की चासनी, 'माँ' का ही तो सौगात-संदेश है। उनकी आत्मीयता की फुहार एवं स्नेह की शीतल छाया में ही तो दूर देश से आते बटोही नई सांस लेता है, सुस्ताता संभलता है फिर ढेर सारी दुआएँ, वर्जनाएं एवं मन्नतें लेकर मुक्त भाव से पक्षी की तरह उड़ता चला जाता है - अपनी तकदीर को सजाने-सँवारने जीवन को एक मुकम्मल ऊँचाई देने।

'माँ' तो एक खुबसूरत एहसास एवं जाग्रत प्रेरणा भाव है जिसमें गति, लय, स्वर-संगीत की निरंतरता, प्रवाहमयता एवं सोंधीगंध की मिठास है। माँ, सर्वसमावेशी धर्म एवं संस्कृति की आधार भूमि तथा सृष्टि यज्ञ की पावन समिधा कथा है। माँ, अखंड सनातन भाव मूर्ति भी है - वह दानमूर्ति, शान मूर्ति, ज्ञान मूर्त्ति, ध्यान मूर्ति एवं कल्याणमूर्ति की सम्यक भाव-संवेदना स्थिति दशा है।

आज आदमी भटक गया है। आदमी पर अहंकार खड़ा हो गया है, आदमी बड़ा नहीं उसका अहंकार बड़ा हो गया है। आदमी खो गया है भीड़ में, अनाप-सनाप, अनर्गल एवं चकाचौंध में भोगवाद और उपभोक्तावाद के दुःस्वप्न तथा वायवीयता में जीता वह बर्वरता एवं आतंक का पर्याप्त होता चला जा रहा है।

'माँ' की अस्मिता-अस्तित्व की रक्षा के बजाय जाने-अनजाने लूट-खसोट, स्वार्थ-लालच, धृणा-ईर्ष्या, बेईमानी तथा व्याभिचार की जमीन पर आलीशान आशियाना खड़ा कर अपनी पीठ स्वंय थपथपा रहा है।

गाँव से महानगरों तक में माँ, भागती-दौड़ती पराश्रित होकर वृद्धा-आश्रम तक की यात्रा करती है - जूठन चाटती और अन्ततः दम तोड़ देती है। यह आज की दुनिया का असली दस्तावेज है जो आज के समाज में जीने वाले मानवों की विकास कथा है। यह सच्ची आस्था-भक्ति, समर्पण, आराधन की ताजातरीन तथा रचित आधुनिक जीवन शैली जीने वाले लोगों के तहजीच, तौर-तरीके एवं सोच की एक बानगी भर है। हकीकत तो और भी वीभत्स एवं भयावह है क्योंकि आये दिन मीडिया की सक्रियता से उजागर होने वाले चेहरे को देखना पीड़ा को और भी गहरा देता है।

सभ्य समाज के दमदार एवं रोबदार चेहरे के पीछे माँ, की सिसकती आवाज गुम होती चली जा रही है फिर भी सच को छिपाना-झुठलाना कब तक संभव है। आज भी 'माँ' के सपूत हैं - माई के सच्चे लाल हैं - जो माँ के चरणों में अपना सर्वस्व न्योछावर कर उनके आशीष एवं पदधूलि को ही चंदन समझते हैं। ऐसे सपूत इस राष्ट्र के अस्मिता गौरव एवं मानवता के सच्चे ध्वज वाहक और संदेशवाहक हैं जो अपनी माँ के आदेश पर कुछ भी कर गुजरने का पुरूषार्थ रखते हैं। तभी तो कहते हैं -

सत्व वो अधिकार छीनना जानता हूँ
धूल को चंदन बनाना जानता हूँ
माँ अगर तू साथ मेरे हो सदा
दुश्मनों को तौलना भी जानता हूँ।
कौन है जो रोक भी मुझको सकेगा
सामने मेरे कोई क्या टिक सकेगा
बाजुओं में कूबतें, फिर है बुलंदी हौसले भी
शेर-सा मैं भी गरजना जानता हूँ।

आज भी एक सपूत का यह अहोभाव एवं 'माँ' के प्रति संवेदना-भक्ति है जो माँ को त्याग-सेवा की आदर्श मूर्ति के रूप में पूजता है। ऐसे सपूत भी पूजा एवं नमन के योग्य है जो अपनी माँ एवं पिता के कार्यो एवं गुणो को एक नया आयाम देकर स्मरण-वंदन करते है ऐसे सपूतों की आत्मा पुकारती कहती है -

माँ तुम कहाँ नहीं हो, कण-कण में हो,
माँ तुम समग्र हो जन जन में हो,
तुम बह रही हो रक्त धमनियों में गंगा की तरह
तुम अंखड अस्तित्व हो जन-मन में हो

- जय माँ - जय नारी शक्ति।

यहाँ कुरूक्षेत्र सजा है

अभिनव अरूण
वरिष्ठ उदघोषक, आकाशवाणी, वाराणसी

चुप मत रह तू खौफ से
कुछ बोल
बजा वह ढोल
जिसे सुन खौल उठें सब

ये चुप्पी मौत
मरें क्यों हम
मरे सब
हैं जिनके हाँथ रंगे से
छिपे दस्तानों भीतर

जो करते वार
कुटिल सौ बार टीलों के पीछे छिपकर
तू उनको मार सदा कर वार
निकलकर मांद से बाहर

कलम को मांज
हो पैनी धार
सरासर कर सरासर वार
पड़ेंगे खून के छींटे
तू उनको चाट
तू काली बन
जमाकर काल
पहन ले मुंड की माला
हृदय में भर ले ज्वाला

मशअलें बुझ न जायें
कंस खुद मर न जायें
तू पहले चेत
बिछा दे खेत

अरे तू एकल एकल
उठा परचम
दिखा दमखम
निरर्थक न हो बेकल
यहाँ कुरूक्षेत्र सजा है
युद्ध भी एक कला है,
नहीं उम्मीद न आशाएं
दिखा तलवार का जौहर
बना टोली चला बोली
तू सबको एक तो कर ले
सभी पीड़ाएं हर ले

तू है दाधीच
भुजाएं भींच
एक हर बल को कर ले
यहाँ शोषित जो जन हैं
तिरस्कृत हाशिये पर
तू उनका क्यों न वर ले

नहीं अब देव आयेंगे
सनातन सत्य अड़ा है
प्रश्न दर प्रश्न खड़ा है
सगर अतृप्त रहें न
भागीरथ यत्न तो कर ले

हाँ अब कंदील जलेंगे
चोटी पर पाँव चढ़ेंगे
आम को गर्भ से छीनो
तीर बिखरे हैं बीनो
छली ने हमें छला है
युद्ध भी एक कला है

चन्द्रगुप्तों अब जागो
न तुम तो सच से भागो
गुरु की खोज क्या करना
चपल अब खुद है बनना
त्याग, बलिदान ध्येय हो
राष्ट्र-हित मात्र प्रेय हो

किताबें बहुत हो चुकीं
अमल करने का मौसम
यही और यही वक्त है
उबलता आज रक्त है
सदा था और आज भी
मान, जन, बल सशक्त है

न अब कवितायें होंगी
शब्द अब युद्ध करेंगे
नहीं तर्कों का भय अब
न टूटेगी ये लय अब
समीक्षा का रथ लेकर
चतुर चापाल चला है
तो हम तैयार खड़े है

आगे बढ़ कर हो हमला
छाती चढ़ कर हो हमला
अपने मस्तक पर हमने
राष्ट्र हित रक्त मला है
युद्ध भी एक कला है

आत्मसात

छाया पांडेय
भागलपुर

जीवन के सतरंगी क्षितिज
मूक बने हर चाहत के पल
आत्मसात कर लेने दो प्रिय
अनंत अविरल प्रणय मलय को।
उच्छवास के गर्म अनघ तो
सांसों में घुलने को आतुर
त्रोटक चंचल चितवन तो बस
अंजन बन नैनों में आकुल
रोम-रोम के सिहरन तो अब
बने द्वार अंतः प्रवेश के
अस्थि मज्जा मूक प्रहरी
रक्तिम ओष्ठ कपोल पर अंकित।
जग दृढ़ता दिशा-दिशा में
प्रणय विलय हो गया समर में
आच्छादित अस्तित्व हमारा
व्यक्त हो रहा अशेष में।

दूसरों के अवगुणों का देखना ही अवनति का कारण है और प्रत्येक व्यक्ति से गुण ग्रहण करना ही उन्नति का कारण है। अतः गुणदर्शी बनना चाहिए।

अनुबंध

कहीं खोल न दें
मेरे ही अवयव
मेरा रहस्य
इसलिए भागता है मन
भीड़ से।
उपवन में
चुपचाप बैठना
अच्छा लगता है
मगर वहाँ भी
छेड़ते हैं सभी।
धीरे-धीरे
अपनी पंखुरियों को खोलती
कलियाँ कहती हैं
मेरी तरफ देखो
देखो न!
उनकी पंखुरियों में मुस्कुराते हैं
तुम्हारे होंठ।
पक्षी शरारत से
उतर आते हैं
मेरे पास
पूछते हैं हाल
उनकी चहचाहट में
सुनाई पड़ती हैं
तुम्हारी आवाज।
निगोड़ी घास भी
अपनी सुगबुगाहट में
छिपाए रहती है
तुम्हारा स्पर्श।
महुए के पेड़ से
अभिसार कर लौटी
मदमाती हवा में
होती है तुम्हारी सुगंध
और प्रकृति के होंठों पर
प्रेममय अनुबंध।

सोचा है कभी

लगातार सूर्य के चक्कर काटती
धरती सोचा है कभी!
सीलन भरे अँधेरे में गुमनाम
तुम्हें धरता है कोई प्रेम से।
हजारो-हजार सिर-माथे पर
ढोता है तुम्हारी ममता का अतिरिक्त भार
निमिष मात्र की जिसकी विचलन
खतरा है तुम्हारे अस्तित्व के लिए,
उसके स्पर्शों की सुरक्षा में हरी-भरी रहती हो तुम
फिर भी नहीं समझती उसका दुःख।
सोचो धरती
किसका प्रेम है सच्चा
तुम्हारा या शेषनाग का!
प्रेम की यह कैसी
भर्तृहरि नियति है
कि जिसे चाहो
वही चाहता मिलता है
किसी और को।

रंजना जायसवाल
प्राध्यापिका
सेंट जोसफ कॉलेज, गोरखपुर

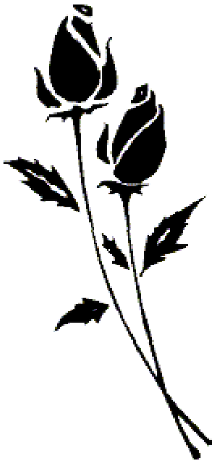

उद्योग, संयम, दक्षता, सावधानी, धैर्य और सोच-विचार कर कार्यारम्भ करना - ये उन्नति का मूल मंत्र है। इस प्रकार के गुणवात व्यक्ति को असफलता का मुख नहीं देखना पड़ता है।

न रूकूंगी, न हारूंगी

डॉ. राधाकृष्ण सहाय

जानकी नाथ क्रिमिनल के सबसे नामी एडवोकेट थे। तेज तर्रार। कोर्ट में दहाड़ते तो जज की कुर्सी हिलने लगती। नियम कायदे के पक्के। घड़ी के कांटे की तरह अपने असिस्टेन्ट और मुंशी के साथ ठीक आठ बजे बैठ जाते। साढ़े दस तक काम निबटा कर खड़े हो जाते।

कमरे में पहुंचते। विष्णुराम टाई पहनाता, काला कोट डालता, जूता पहनाता। फिटन तैयार रहता। कोर्ट चले जाते।

कमाई अच्छी थी। मकान बनवाया था तो उसमें ग्यारह कमरे थे।

बरामदे के दोनों ओर गोल घर था। नौकर-चाकरों की फौज थी। उनमें विष्णुराम खास था। पित मरू। पत्नी अपने साथ मायके से ले आयी थी।

सब कुछ था। पैसा....यश...व्यक्तित्व का दबदबा लेकिन, भीतर से वे थे अकेला। पत्नी एकमात्र संतान, तृप्ति को जन्म देकर चल बसी थी। खैरियत यही थी कि उनकी माता जी जीवित थीं। सत्तर पार परन्तु चौकस।

आंगन के बरामदे पर गावतकिया लगा बैठ जातीं। इशारे पर सारा घर चलता। यहां तक कि जानकीनाथ उनके सामने मेमने की तरह सिर झुकाए खड़े रहते। मां जो भी कहतीं सिर झुकाए खड़े रहते।

घर में जानकीनाथ की मां को सभी आजी कहा करते। उन्होंने ही विष्णुराम को जानकीनाथ की ड्यूटी दी थी। विष्णुराम को एक बेटा, हरे राम। होगा वह तेरह-चौदह का। उसके जिम्मे तृप्ति की देखभाल थी। तृप्ति नौ साल पूरी कर चुकी थी। सातवीं में पढ़ रही थी। हरे राम सुबह से रात तक तृप्ति के साथ लगा रहता। स्कूल जाने के पहले तृप्ति को आजी अपने हाथ से दूध ा पिलाती। दूध के इंतजाम से लेकर, सड़क पार करवाना। स्कूल गेट के भीतर पहुंचाना, सब करता। ठीक दो बजे हरे राम स्कूल के गेट पर होता। तृप्ति को स्कूल से घर ले आता। उसका बस्ता आजी के कमरे में सम्हाल कर रखता। तृप्ति आजी के साथ ही सोती थी। उसी कमरे में तृप्ति का आलमीरा था। हरे राम तृप्ति के कपड़े, किताब, मेज सजाकर रखता। स्कूल से लौटने के बाद तृप्ति आजी की गोद में दूध पीती। केला खाती। शाम होती। आजी का हुक्म था, एक घंटे का खेल हरे राम के साथ।

छत के चारों ओर पांच फीट मुड़ेर की सुरक्षित छत। दो कमरे। एक कमरे में सामान खचाखच। दूसरे कमरे में एक पलंग लगा हुआ था।

तृप्ति अक्सर पलंग के नीचे चली जाती। हरे राम जानबूझ कर इध र उधर खोजने का नाटक करता। एक दिन तृप्ति सामने वाले कमरे में घुस गयी। काठ के लम्बे-चौड़े बक्से के पीछे खड़ी हो गयी। पांच मिनट, दस मिनट बीते। ऊब गयी वह। चिल्लायी, ''मैं यहाँ हूँ।''

हरे राम पकड़ने के लिए लपका। तृप्ति उसकी अंकवारी में आ गयी। सन्न रह गयी। हरे राम के शरीर की कोई चीज उसकी छाती को छू रही थी।

कौतूहल जिज्ञासा में बदल गया। दोनों नीचे आए। तृप्ति आजी के पास बैठी थोड़ी देर। फिर हरे राम ने कमरे में पढ़ने वाले टेबुल तक पहुँचा दिया।

तृप्ति असाधारण रूप से जितना सेन्सेटिव थी उसी तरह मेधावी भी। स्मरण शक्ति अद्‌भुत। क्लास में वह जो कुछ सुनती उसे वह अक्षरशः दुहरा सकती थी।

तृप्ति जिस काम को करती पूरी तन्मयता के साथ। पढ़ती तो सारी दुनिया भूल जाती।

अक्षरों के संसार में कौतूहल से उत्पन्न जिज्ञासा, पता नहीं कहाँ दुबक गयी। वह पढ़ने में डूब गयी।

समय कागज के पन्ने की तरह पलटता गया।

उसी स्कूल से आई.एस.सी. की परीक्षा पास की। रैंक था प्रथम श्रेणी में प्रथम। इतना होने पर भी, तृप्ति को अपने अच्छे रिजल्ट का न तो मान था। न गुमान। गंभीर, मृदुभाषी मुस्कराती रहती।

पहुँची विश्वविद्यालया

फिजिक्स में आनर्स लिया। आप्सनल में बॉयोलॉजी। स्त्री-पुरूष की संरचना को उसने जाना, समझा लेकिन उसकी जिज्ञासा ने उस दौरान कभी सिर नहीं उठाया। बी.एस.सी. में भी प्रथम श्रेणी में प्रथम आई।

फिजिक्स में एम.एस.सी. कर रही थी। सिक्स्थ ईयर था। उसने बोर्ड पर एक नोटिस देखी। जर्मनी के एक विश्वविद्यालय में ऐस्ट्रो फिजिक्स में स्कॉलरशिप। साथ-साथ आने-जाने का खर्च।

तृप्ति को पर लग गए.....

पहुँची वाइसचांसलर के पास। वाइस चांसलर उसकी मेधा से परिचित थे। तृप्ति ने स्कॉलरशिप की नोटिस की बात कही।

आनन-फानन में आवेदन का फार्म आ गया। अपने सामने भरवाया वी.सी. ने। फिजिक्स डिपार्टमेंट से रिकोमेंड करनवाया। खुद हाइली रिकोमेंड किया। लिखा, आवेदक असाधारण रूप से मेधावी, निष्ठावान और चरित्रवान है।

स्वयम् वी.सी. ने उस फार्म को लिफाफे में सील किया। एहतियात से पोस्ट करवा दिया।

तृप्ति जब उठकर खड़ी हुई तो बोले, 'डोनट वरी। यू विल गेट इट।'

रात में तृप्ति ने सारी बातें विस्तार से बतलायीं। आजी ने उसे बार-बार दुलारा। बोलीं, कहती हूँ, तुमको जरूर मिलेगा। चिंता नहीं करो। लेकिन, आजी ने एक हिदायत भी दी। यह बात किसी के कान तक नहीं पहुँचे। खासतौर पर जानकी के कान तक।

उसी रात गोद में चिपकाए-चिपकाए आजी ने बताया कि उसके पिता कितने क्रोधी हैं। उसके पापा किस तरह दुलहिन पर हाथ छोड़ दिया करते। दुलहिन चुप रहती। यहां तक कि उसने मुझसे भी कुछ नहीं कहा कभी। मन उसका निर्मल था। बहू ने मर्यादा का कभी उल्लंघन नहीं किया।

आजी गीली हो उठी थीं। तृप्ति को अंकपाश में बांधे सहलाती रहीं। कोई डेढ़ माह बीते होंगे।

वी.सी. का फोन आया, 'कांग्रेचुलेशन, आकर चिट्ठी ले जाओ।'

दौड़ी पहुँची। वी.सी. ने उसके साथ चाय पी। हाथ में चिट्ठी थमा दी।

आकर आजी को बतला दी। आजी बेहद खुश। चेहरा कमल की तरह खिल गया। सुबह विष्णुराम की पुकार हुई। विष्णुराम आया, बोलीं आजी, 'जानकी से मिलने के लिए कहो।'

जानकी नाथ तुरंत आए। तृप्ति उनके बगल में खड़ी थी। जर्मन विश्वविद्यालय के ऑफर की चिट्ठी उसके हाथ में थी। जानकी नाथ पढ़कर चुप हो गए। एकदम चुप जैसे सांप सूंघ गया हो।

क्षणेक बाद पूछा, 'अपने देश में इस विषय की पढ़ाई नहीं होती?'

'होती है, पापा, लेकिन, वहां के स्टैंडर्ड और यहां के स्टैंडर्ड में आकाश-जमीन का फर्क है।'

तत्क्षण आजी का हुक्म हुआ, 'जानकी, तृप्ति जो चाहती है वही होगा, समझे?'

जानकी नाथ ने सिर नवा कर मां के आदेश को सुना। कोई टीका-टिप्पणी नहीं।

जर्मनी पहुंच उसने जाना ही नहीं, सूरज कब उगा, कब डूबा।

शोध को उसने दो साल में पूरा कर लिया। विषय भी उसके लिए कौतूहल से भरा था, ध्रुवतारा।

डॉक्टरेट की उपाधि तीन माह में मिली।

उसके कैरियर का ग्राफ इतना अच्छा था कि उसी विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर का पद मिल गया। अब वह निश्चिंत थी। कभी-कभी आजी याद आती लेकिन वहां का जीवन उसके लिए इतना नया था कि उसको देखने में मशगूल हो गयी। तेज सूरज। तेज हवा। माइनस पांच तापमान। लबादा पहने अण्डरग्राउण्ड या सरफेस ट्रेन में लोग। छोटे-छोटे बच्चों को तो जैसे ठंड छूती ही नहीं। कभी आकाश मटमैला हो उठता। रूई के फाहे की तरह बर्फ छोटे-बड़े फूल की तरह झरते होते।

लेक पर रंग-बिरंगी छतरियां। बिकनी पहने मर्द, औरत, बच्चे।

सड़क पर टहलते स्त्री-पुरूष। बांहों में बांहें। युवक-युवतियाँ सड़क किनारे एक-दूसरे को किस करते हुए।

क्लबों में डांस। एक-दूसरे से चिपके-लिपटे हुए।

तृप्ति के लिए रोज कोई न कोई ऐसा दृश्य दिख जाता जिसकी उसने कभी कल्पना नहीं की थी। पूरी तरह बदला हुआ परिवेश। भारतीय जीवन से एकदम अलग।

भारत के बड़े शहरों में लिव इन का फैशन सुना था उसने। यहां तो सम्बन्ध ही यही हैं। एक रात, एक माह, एक-दो साल में स्त्री पुरुष बदल लेती या पुरुष स्त्री बदल लेता।

तृप्ति के लिए जीवन का यह नया रूप कौतूहल भरा था। परन्तु, बचपन से वह प्योर वेजेटेरियन थी। वह वही रही। वेश भूषा में कोई बदलाव नहीं। साड़ी छोड़ वह कुछ नहीं पहनती।

क्रिसमस की छुट्ठी में एक सप्ताह के लिए पहुँची वह जर्मनी के बाल्टिक द्वीप। बोट से पहुँचना हुआ। बोट बैक वाटर पर चलता । सी गल कभी नीचे उतरते, कभी ऊपर-ऊपर उड़ते। कुछेक ब्रेड के टुकड़ों को हवा में उछालते, सी गल बड़ी खूबसूरती से हवा में तैरते उन टुकड़ों को चोंच में दबा लेते। द्वीप में कोई होटल तो था नहीं, पेईंग गेस्ट सिस्टम। उसने चलते वक्त ही एक रूम बुक करा लिया था। पहुँच कर अपना बैग उतारा। बैग से एक सेब निकाल खाती-दौड़ती पहुँची वह समुद्र तट। एकदम नया अनुभव। कभी समुद्र देखा नहीं था। बाल्टिक सी का पानी नीला। आकाश की तरह। वह काफी देर तक बैठी रही। लौटी तो गेस्ट हाउस की मालकिन उसका इंतजार कर रही थी। खाने की मेज पर गोश्त। चावल। सॉसेज।

तृप्ति ने कहा, 'प्योर वेजेटेरियन हूँ।'

आनन-फानन में बटर में उबला आलू और चावल उसके सामने था।

समुद्र देखकर वह बच्चा बन गयी थी। रात भर समुद्र का सपना देखती रही।

सुबह में टोस्ट-मक्खन। फल खाये।

चलते समय मालकिन ने बताया कि किनारे से डेनमार्क दिखता है।

रात में उसकी लाइट देखी जा सकती है।

तट पहुँच उसने डेनमार्क को देखा। मन में हुआ, क्यों न रेत पर घूमा जाय... वह रेत पर चलने लगी। हठात् एक जगह वह सिहर उठी। देखा, कोई पन्द्रह लोग, जिनमें स्त्रियां और पुरुष, नंगे। शरीर पर एक धागा नहीं। दो-तीन बालू के बीच आधे शरीर को गाड़ खड़े थे। कुछेक टहल रहे थे। कुछेक चित लेते हुए सूरज को निहार रहे थे। चुपचाप लौट आई। रात में गेस्ट हाउस की मालकिन से इस घटना का जिक्र किया। बताया उन्होंने, जर्मनी में एक न्यूड सोसायटी है। इनका मानना है, जिस रूप में जन्म हुआ वही रूप सच है। प्रकृत रूप। वस्त्र से ढंकना प्रकृति को ढंकना है। ये बोहेमियन लाइफ में विश्वास करते हैं।

लौट वह मनुष्य रूप की विविधता पर सोचने लगी। देर तक। जिज्ञासा और कौतूहल का खेल चल रहा था। पुस्तकालय में बैठने लगी। फिजिक्स का गहरा रिश्ता फिलासफी से होता ही है।

वह फिलासफी की किताबों में बहुत दिनों तक डूबी रही।

एक दिन सुबह-सुबह घर से फोन आया। आजी नहीं रही।

भागी-भागी पहुँची। श्राद्ध में शामिल हुई। भीतर-भीतर खूब रोई। लगा, इस संसार में अब उसका कोई नहीं।

पापा ने पूछा, 'शादी के बारे में क्या सोचती हो?'

बोली कुछ नहीं। मच्छर को जैसे शरीर से उड़ा दिया जाता है उसी तरह उसने इस बात को हवा में उड़ा दिया। उसे याद आयी, आजी की बातें पापा किस तरह मां पर हाथ छोड़ते थे। तृप्ति ने जब से यह बात सुनी थी तभी से उसके मन में एक गांठ पड़ गयी थी।

चलते समय नौकर-नौकरानियों को पैसे दिए। विष्णुराम को कुछ ज्यादा। हरे राम को सबसे ज्यादा।

अब पढ़ने में मन नहीं लग रहा था। आजी सपने में आने लगी थी।

कुछ दिनों तक वह उदास रही। फिर अपने को सम्हाल लिया।

एक रात बाल्टिक द्वीप के न्यूड लोग याद आए। उनके जीवन दर्शन पर सोचते-सोचते सो गयी। उसी रात एक सपना देखा। सपना था कि हरे राम उसके सामने खड़ा...कुछ देर में शरीर में कम्पन हो रहा था। उसको लग रहा था, दोनों जांघों के बीच एक पतला सांप टहल रहा है...धीरे-धीरे वह शरीर में घुसता ही जा रहा है....तृप्ति को अच्छा लग रहा था। देर तक वह सपने में रही।

सुबह नींद खुली तो तर्क-वितर्क। प्रकृति ने स्त्री-पुरुष में लिंग-भेद क्यों किया? किसलिए? यह प्रकृति का खिलवाड़ क्यों?...बॉयोलॉजी की पढ़ाई में उसने पढ़ा था, प्रजनन एकमात्र उद्देश्य होता है.....

तृप्ति सोच रही थी। पुरुष सहवास के बिना प्रजनन संभव नहीं, और पुरुष का रूप?.. अहंकार.. अधिकार...देह सुख... पिता की याद आयी। मां याद आयी। उसके भीतर जो गांठ पड़ गई थी वह कभी नहीं खुली थी। घृणा को उसने पनपने नहीं दिया था। एक सतर्कता। एक सजगता। वह सोचा करती, आदमी के शरीर में कितने कीड़े हैं। माइक्रोस्कोप से देखो तो रक्त की एक बूंद में करोड़ों कीड़े...तरह-तरह के कीड़े....भला उन कीड़ों के साथ आदमी कैसे देह सुख भोग सकता है? और बड़ी बात यह कि कीड़ों के साथ देह सुख का स्तर कितना ओछा होता है।...हेय! क्या जीवन का लक्ष्य देह सुख हो सकता है? स्कूली दिनों में कही गयी शिक्षिका की बात उसके दिमाग में धंस गयी थी। अक्सर वह कहा करती, 'देखो, ओस कण यदि समुद्र में गिरता है तो वह उसी में विलीन हो जाता है और वही ओस कण जब किसी पत्ते पर गिरता है तो वह सौन्दर्यमय हो उठता है।'

तय किया कि वह 'वुड' में एक अपार्टमेन्ट खरीदेगी। जर्मनी का 'वुड' एकदम निरापद। न सांप...न बिच्छू। न शेर....केवल वृक्ष। सूरज की रोशनी

को पकड़ती वृक्षों की फुनगियां। कोई शोर नहीं। शांत। हवा। सुबह। शाम। रात। वृक्षों के साथ नाता जोड़कर आदमी सुखपूर्वक रह सकता है।

एक सप्ताह, एक माह या दो दिनों की छुट्टी होती नहीं कि वह 'वुड' में चली जाती। एक कमरा। किचन, टॉयलेट। लकड़ी का अपार्टमेन्ट। एक दूसरे तरह का भाव जगाता।

एक दिन उसने देखा, विशालकाय वृक्ष। उसके ऊपर लता ऐसे फैली थी कि उसका तना दिख ही नहीं रहा था।

उस लतर पर छोटे-छोटे, नक्काशी की तरह केसरिया रंग के फूल लटके हुए थे।

तृप्ति उन फूलों के प्रति अपने आकर्षण का रोक नहीं सकी। निकट से निकटतर चलती गयी। तभी एक अप्रत्याशित घटना घटी।

तृप्ति को लगा, उसके सारे अंगों को लतर लपेटती जा रही है और वह नाचती-नाचती पूरी तरह लतर के साथ लिपटती गयी। लतर ने इस तरह कस लिया था कि वह केवल ऊपर आकाश देख सकती थी। सिर नीचा कर ही नहीं सकती थी।

धीरे-धीरे उसकी चेतना लुप्त होती गयी। चेतन अवस्था से अवचेतन, फिर अचेतन। कोई विचार नहीं। शरीर मन खाली। हवा की तरह हल्की, उड़ रही हो मानो! वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को देख रही थी। अनगिनत तारे नक्षत्र। एक नहीं अनेक सूर्य। वह प्रकाश देख रही थी। प्रकाश में डूबती गयी वह...।

पता नहीं। कब। कैसे। वह बंधनमुक्त हुई।

चेतना लौट चुकी थी। सामने सब कुछ वह देख सकती थी।

वह देख रही थी। धरती पर अपने पैर...

धीरे-धीरे वह चलने लगी। पहुँची अपने कमरे में।

बैठ गयी काठ की कुर्सी पर। शांत। स्थिर।

हथेलियों के बीच ठुट्ठी टिका कर बैठी।

वह सोच रही थी.....जो कुछ भी देखा वह स्वप्नवत था। कल्पना के अलावा और क्या था भला?

देह रहित अनुभव भी काल्पनिक था। देह सहित अनुभव गहरी नींद में था। वह भी काल्पनिक। लैब में उसने नक्षत्रों का अध्ययन किया। डॉक्टरेट की उपाधि मिली। वह अध्ययन भी तो काल्पनिक ही था। टेलिस्कोप, कम्प्यूटर सहारा थे। प्रत्यक्ष तो कुछ भी नहीं था। सब काल्पनिक...!

तृप्ति भंवर में पड़ गयी थी।

प्रत्यक्ष क्या है? कहां है? उसका रूप कैसा है?....

उसका सारा ज्ञान क्या काल्पनिक है? दोनों के अनुभव उसके पास थे। प्रयोग सिद्ध अनुभव और अनुभव सिद्ध अनुभव....क्या सब काल्पनिक नहीं? भीतर-भीतर छटपटा रही थी। मर्मान्तक पीड़ा हो रही थी उसे.....क्या जीवन कोरी कल्पना है? जन्म और मृत्यु क्या कल्पना है?

मृत्यु के भाव ने उसके भीतर आजी को जीवित कर दिया।

आज आजी होती तो वह उससे पूछती।

जरूर वह बतलाती, उंगली पकड़ कहती, पूरब जाना है या पश्चिम...दक्षिण या उत्तर...जीवन क्या है, वह बतलाती जरूर...

आजी का प्रेम मांसल भी था। प्रत्यक्ष भी। वह प्रेम ऐसा था जो प्रयोग सिद्ध और अनुभव सिद्ध दोनों ही था। उसकी गोद अलौकिक जगत में ले जाती। ऐन्द्रिक प्रेम अतिन्द्रिय बन जाता। वह प्रत्यक्ष भी था। अप्रत्यक्ष भी था। उसका प्रेम इतना गहरा प्रगाढ़...कि उसका जीवन उसी प्रेम रस से लिखा गया। उसने उसके शरीर के कण-कण को आप्लुत किया था। तृप्ति की आंखों से आंसू की बूंद टपक रही थी...अबाध....अविरल।

तभी अनुभव हुआ, आजी पीठ पर खड़ी हैं, और दोनों हाथों से बात सहला रही हैं....वह कह रही हैं, ''बेटा जी, जीवन हारने के लिए नहीं मिलता।'' अभी और कुछ आजी कहतीं, उसके पहले ही तृप्ति झटके से कुर्सी छोड़ उठ पड़ी।

वह उस काठ के छोटे कमरे में इधर से उधर चलती हुई बड़बड़ाने लगी...''नहीं आजी, नहीं....न रूकूंगी, न हारूंगी....साफ-साफ देख रही हूँ कि मैं हूँ। अपनी इयत्ता को देख रही हूँ मैं, लेकिन 'होना' मात्र पर्याप्त नहीं होता। होने का अर्थ तो पाना ही होगा, आजी, द मीनिंग ऑफ बीइंग''...

उसके शब्द छत से, दीवार से टकरा रहे थे। वर्तुलाकार ध्वनियों-प्रतिध्वनियों के घर्षण से आग पैदा हो रही थी....और उस आग से स्वर्णिम किरणें फूट रही थीं। तृप्ति खुली आंखों से उन किरणों को देख रही थी।

एक सावित्री की मौत

डॉ0 अमरेन्द्र

'आपने ठीक पहचाना बाबू जी, यह वही बसमतिया है, छट्टू मरड़ की बेटी। लेकिन अब इसका नाम बसमतिया नहीं। अब यह अपना नाम रबिया खातून बताती है 'सो क्यों?'

'बड़ी लम्बी कहानी है बाबू जी। सब तो बताना एकदम मुश्किल है। वैसे कौन नहीं जानता है - बसमतिया की कहानी। किसी से पूछिएगा तो विस्तार से बताएगा। अब तो गाँव का बच्चा-बच्चा जान गया है - बसमतिया की कहानी बसमतिया न कहिए बाबू! रबिया खातून कहिए।'

'लेकिन यह सब हुआ कैसे?'

क्या कहें बाबूजी, वह जो ननकेसर भगत था न! अरे वही, पुरबी टोला वाला ननकेसर भगत, उसी का बेटा कर्कट! क्या कहें बाबूजी, वह तो बसमतिया पर इस तरह लट्टू था कि बस! गाँव-टोला भर में दोनों के प्रेम की चर्चा उड़ती रहती। यह भी क्या कम थी बाबू जी। कहने को थी तेरह-चौदह बरस की, राधा के भी कान काटती थी।

'जात तो दोनों की एक ही थी। क्यों नहीं ननकेसर और छट्टू ने बातचीत करके दोनों की जोड़ी लगा दी?' इस बारे में तो मैं क्या कहूँ, लेकिन इतना तो जानता हूँ कि बसमतिया की माय ने इस बात को लेकर कर्कट की दुर्गति कर दी थी। समय का भी फेर देखिए, क्या सुमति-कुमति का चक्कर पड़ा कि बसमतिया का भी मन धीरे-धीरे कर्कट में उचाट होने लगा।'

'सो क्यों ?'

'इस बारे में मैं क्या बताऊँ बाबूजी। वैसे गोतिया-लोहिया का कहना है कि बसमतिया की माय ने उसे ओझा-गुनी का मन्तर पढ़ा बतासा खिला दिया था, देवघर का प्रसाद कह कर, उसी दिन से बसमतिया का मन कर्कट की ओर से उचाट होने लगा था। लेकिन इटहरी वाली भौंजी का तो कहना है कि बसमतिया को उसकी माँ ने कहा था कि अब से अगर तुम कर्कट से मिली-जुली तो मैं उसकी चमड़ी उतरवा लूँगी और इसी डर से बसमतिया ने उससे मिलना-जुलना भी छोड़ दिया लेकिन कर्कट इसे कहाँ छोड़ने वाला था। किसी न किसी वक्त कोई न कोई बहाने वह दिन भर में उससे मिल ही लेता। प्रेम भी अजुगुत चीज होता है, बाबूजी - आदमी को नचा-नचा के रख देता है। और जब देवी राधा को ही नचा दिया-तब मनुष्य की क्या बात! लेकिन क्या बाबूजी, इस प्रेम से किसी देर यश भी मिला है? बदनामी छोड़कर और क्या मिला है? कर्कट की भी क्या दुर्गति नहीं हुई। क्या कहें बाबूजी, एक रात को बसमतिया की माँ ने घर के पिछवाड़े में पाकर उसकी जुल्फी लचा-लचा कर उसकी वह पिटाई की कि पूछिए मत! प्रेम करने का सब नशा ही उसका उतर गया। क्या जाने, भोर होते-होते कैसे यह खबर सबको मिल गई पूरबी टोला से लेकर पछियारी और उतरवारी से लेकर दखिनवारी टोले तक के किसने नहीं यह जाना। कर्कट भी अपना कालिख लगा हुआ मुँह कहाँ-कहाँ छिपाता। तिसरे दिन जो गाँव को छोड़ा, तो अभी तक नहीं लौटा है। कुछ तो कहते हैं कि कर्कट ने कहलगाँव टीशन के नजदीक टरेन से कट कर जान दे दी। लाश कर्कट से मिलती थी। लेकिन सुरेनमा अपनी आँखों देखी बात बताता है कि उसने पौरकां साल में कर्कट को खोंचा बेचते जमालपुर स्टेशन में देखा था। अब कौन क्या कह सकता है बाबूजी, कि कर्कट जिन्दा है या मर गया।

'लेकिन बासमती का यह हाल?'

'मत पूछिए बाबूजी, कर्कट के जाने के बाद, साल भर तो बसमतिया का घर-दुआर से निकलना भी बन्द हो गया, नद्दी बारी तो करना छोड़ दीजिए। जर-जनानी क्या बातें कहती हैं, क्या सुनिएगा। आप को याद होगा बाबूजी, नहीं भी हो, तब महमूदवा, चार या पाँच साल का था।'

''हाँ-हाँ, बाबूजी, वही इस्माइल का बेटा। तब तो आप को याद ही है। बम बैजनाथ, मैं एक भी बात झूठ नहीं बोल रहा हूँ बाबूजी। महमूदवा का लक्षण मुझे भी ठीक नहीं लगता था, लेकिन गाँव-जवार की बात थी, कौन क्या बोले। वैसे जो कहिए बाबूजी, घरवैयुया को बुरा लगे न लगे, दूसरे-दूसरे को जरूर बुरा लगता था, घर-घर कानाफूसी तो चलती ही थी।''

'तो तुम्हारा मतलब है कि।''

'बम बैजनाथ, जो झूठ बोलता रहूँ। विश्वास नहीं हो तो गाँव के विदेश्वरी पाण्डे, कैलू भगत, रामचन्नर मरड़, गोविन्द घोष-जिनसे भी हो, पूछ लीजिए। सभी एक ही बात बताएँगे। ठीक ही कहावत है कि तिरिया का चरित्तर और पुरुष का भाग, भगवान भी नहीं जानते, आदमी क्या जानेगा। यही बसमतिया जो कभी कर्कट के बिना चोइयाँ नुची मछली की तरह लगती थी, महमूदवा के साथ लटसट होते ही कैसी हलफला उठी थी। यह तो मैं आँखों देखी कह रहा हूँ बाबूजी। बसमतिया का फिर से नद्दी-बारी जाना शुरू हो गया था।'

'तो इसकी माँ क्या बासमती को नहीं रोकती थी?''

''माँ क्या रोकती बाबूजी। जो अपने चरती रहती थी, वह बेटी को क्या रोकती, नारी धरम को ताख पर रख दिया था बाबूजी।''

'तो दोनों का ब्याह क्यों नहीं कर देती थी?'

'आहा, वही हो कहाँ सका। माँ जो कुछ सोच रही थी, उससे तो बात ही छिना गई।'

'वह क्या।'

'आप तो जानते ही हैं कि ननकेसर को खाने-पीने का ठिकाना ही क्या था। घीच-तीर कर बसमतिया के जन्म तक तो किसी तरह चला, लेकिन उसके बाद बसमतिया की माँ बसमतिया को लेकर अपने चचेरे देवर खखरा के यहाँ ही पड़ी रहती थी। लेकिन आप ही कहिए बाबूजी, यह कोई अच्छा काम हुआ। पेट की ज्वाला किससे पास नहीं होती। एक बार शरम जिसका साथ छोड़ देती है, तब तो जानते ही हैं बाबूजी। खखरा गाँव की ही पुलिस चौकी में रतजग्गी करता था। अरे बाबूजी, चाम जरता है तो किस तक दुर्गंध पुलिस वालों को भी लग गई। उसके बाद तो बसमतिया माय को उसे लेकर दिन-रात वहाँ पहुँचते कौन नहीं देखता था। मगर क्या जवानी भी जीवन भर की होती है बाबूजी, उसमें दस को हो कर, एक-दो ही साल में बसमतिया माय गुलगुलैन लगने लगी थी बाबूजी और जब मोल घटा तब बसमतिया को महमूदवा के हाथ बेचने की बात सोचने लगी। नहीं मालूम, बसमतिया माय को किससे यह पता चल गया था कि 'इनटरकास्ट' बीहा से सरकारी पैसे के साथ-साथ सरकारी नौकरी भी मिलती है। पेट जो न कराए। एक दिन वह बसमतिया को-क्या कहते हैं उसे 'कोट-मैरिज''? वही कराने के लिए गाँव से भोरे-भोरे ही बाहर भेज दिया।'

'तब ?'

'तब तो बबण्डर उठा ही न बाबूजी, गाँव में। भोरे-भोरे खैरावाली, डुमरीवाली और गोलहट्टी वाली जो उधयाई कि क्या कहें। सात पुस्त का निनौन पुंरा के रख दिया। आखिर पूछता हूँ बाबूजी, क्यों नहीं पुराती, गाँव-जवार की प्रतिष्ठा तो सभी पर होती है कि नहीं बाबूजी?'

'लेकिन बसमतिया का यह हाल....

'वही तो बताना चाह रहा हूँ बसमतिया को लेकर महमूदवा जब गाँव चला गया, तब गाँव में भारी आँधी उठी। हिन्दू-मुसलमान की आँधी। एक तरफ हिन्दू-पट्टी के भोला पहलवान, जोगिन्नर यादव, रामकिसुन मिसिर की भीड़ और दूसरी तरफ मौलाना के साथ सभी मुसलमान पंचपट्टी वाला मैदान में जुटने लगे। मेरा कलेजा तो लोहार की धौकनी जैसा होने लगा था। वह तो ठीक 'टेम' पर दरोगा 'इनिसपेक्टर' आ गए थे बाबूजी। दो बार हवा में 'फेरिंग' की। बन्दूक की आवाज होनी थी कि एक-एक कर दोनों पट्टी के लोग खिसक गए। लेकिन महिना भर गाँव में डर बना रहा बाबूजी, हमलोग उधर जाते थे, न मुसलमान टोला का कोय भी इधर आता था।''

'लेकिन यह बसमतिया?'

'बसमतिया के बारे में ही तो बताने जा रहा हूँ, इसके लिए क्या-क्या न हुआ, लेकिन सब बताना मुश्किल बाबूजी। टोले-टोले में पुलिस घूमने लगी। बसमतिया को खोजने। सरपंच बसूदत्त ने मियाँ टोली को चेतावनी दे दी थी, जो पाँच रोज में बसमतिया को हाजिर नहीं किया गया, तो मियाँ पट्टी की सब गुण्डागर्दी ठीक कर दी जायेगी। भला आप ही बताइए बाबूजी, इसमें मियाँ पट्टी का क्या दोष था। दोष जिसका था, उसे तो कुछ कहा नहीं जा रहा था। मुझे, जो साफ-साफ पूछिए तो बाबूजी इसमें सिर्फ दोषी है बसमतिया माय' इसमें इस्माइल का क्या महमूदवा का भी क्या? दही बिल्ली के आगे में कीजिएगा तो चाटेगी ही, वह बिल्ली कारी रहे या गोरी।''

'तब क्या हुआ।'?

'होना क्या था बाबूजी। गाँव में बसमतिया रहती तब तो। लेकिन कौन कानून से बचा है बाबूजी। दस रोज बीते न बीते कि दरोगा साहब ने पकड़ ही तो लिया महमूदवा को। मुंगेर का वह कौन टोला कहा जाता है, इस समय नाम भुला रहा हूँ। कहते हैं, सौ योजन के दूर की चीज गिद्ध को दिखाई पड़ जाती है। न जाने कैसे पुलिस को पता चल गया। अजब 'बरेन' होता है बाबूजी। कैसे-कैसे न सच को उगलवा ही लेती है और हुआ भी वही। ऐसा पेंच मारा कि क्या कहते हैं उनको, जो मुसलमानों को शादी-बीहा कराते हैं, जो भी कराते हों, उनसे एक-एक कर सारी बातें उगलवा दी। तब क्या था। वैसे जो कहिए बाबूजी, वीहा जब हो ही गया, तो इतना घिकवा-मंथन करने से फायदा ही क्या था।'

'सो तो ठीक ही है। उसमें भी जब बसमतिया माँ ही चाहती थी।'

'बसमतिया माय क्या चाहती थी और क्या नहीं, वह आप क्या जानिएगा। बाबूजी, उसकी तो एक ही इच्छा थी। किसी तरह सरकारी रूपैया पाने की। लेकिन उसके मनसूबे पर तो जैसे पानी ही फिर गया। उसने विरोध नहीं किया। बल्कि घूम-घूमकर टोला से लेकर थाने तक यह कहती फिरती कि इस्माइल ने जानबूझ कर मेरे धरम को नष्ट करने के लिए मेरी बेटी को उड़वाया है...हद हो गई। बाबूजी, पुलिस से तो लटसट थी ही। तभी तो पुलिस वाले ने भी जी जान एक कर दिया। नहीं तो ऐसे एग्गी-दुग्गी परिवार के लिए पुलिस को क्या पड़ी है।'

तो तुम बसमतिया के बारे में कह रहे थे।'

'कहने के लिए तो क्या बसमतिया पर ही, इस घटना से जुड़े बहुतों पर बहुत कुछ कहा जा सकता है। लेकिन क्या होगा कह कर। कहने से ही क्या हो जायेगा। अब तो बसमतिया को भी जिन्दगी में जो भोगना है, भोग रही है। देख ही रहे हैं। जो कहिए पुलिस अगर महमूदवा को न पकड़ती फिर महमूदवा को पकड़ के भी कहाँ पकड़ सकी।

'सो क्या ?'

'अरे क्या कहें बाबूजी, महमूदवा की जगह में इसे ही खींच-तीर कर थाना लाया गया। जिस समय बसमतिया थाना लाई। बाबू जी देखने वालों की क्या भीड़ थी। लगता था थाना में मेला लगा हो। मौगी, मरद, बूढ़े, बुतरू की ठसाठस भीड़ में ही जब बसमतिया ने नाम पूछना शुरू किया तो क्या कहें! लेकिन वाह, बसमतिया ने भी रबिया खातून छोड़कर कुछ भी दूसरा नाम नहीं बताया बाबूजी। पुलिस जब माय-बाप के नाम पूछती तो बसमतिया कहती 'मेरे कोई माँ-बाप नहीं। 'जहल' में भी रखी गई। लेकिन बसमतिया पर तो जैसे भूत सवार, हो गया था। बस एक ही बात कहती, मेरे कोई माँ-बाप नहीं। मेरा नाम रबिया खातून है।'

'तब ?'

'तब क्या? डाक्टरी जाँच हुई। बसमतिया को कई दिनों तक कोट होस्पीटल ले जाने के बाद न जाने डॉक्टर और पुलिस ने मिलकर क्या गिटपिट

की और बसमतिया को छोड़ दिया।'

'तो यह ससुराल जाने के बजाय यहाँ हटिया में सब्जी बेच रही है।

'नहीं तो और क्या करेगी बाबू?'

'क्यों महमूदवा नहीं ले गया?'

'आय बाबूजी, आप को तो यह बताना ही भूल गया मैं कि जिस समय पुलिस ने बसमतिया को मुंगेर में पकड़ा, तब तो महमूदवा भी साथ था। लेकिन थाना पर लोगों ने नहीं देखा। क्या कहें बाबूजी, दस आदमी, दस तरह की बातें। कोई कुछ कहता, कोई कुछ। बिरजू मिसिर तब तो हका-हका कर यही कहते थे कि पुलिस वाले ने पैसा लेकर महमूदवा को छोड़ दिया है। लेकिन नसीम मियाँ यही कहते फिरता था कि बसमतिया माय ने ही पुलिस को पैसा-कौड़ी देकर महमूदवा को भगवा दिया, राज खुल जोने के डर से। कौन क्या कह सकता है।'

'लेकिन बसमतिया के ससुरालवाले।'

'आप भी क्या बात करते हैं बाबूजी? बसमतिया से मतलब था, तो महमूदवा को। घरवाले को इससे क्या लेना-देना था। बल्कि पुलिस-उलिस का चक्कर देख कर तो घरवालों ने साफ-साफ कह दिया कि हमलोग कोई बसमतिया का रबिया खातून को नहीं जानते। महमूदवा ने अगर गलती की है तो जाकर उसे मारिए-डंगाइए। लेकिन, जो सच पूछिए बाबूजी तो भीतरिया बात कुछ और ही थी। इस्माईल का साफ-साफ कहना था कि जो औरत जेल काट कर आई है, उसके चरित्र का क्या भरोसा। इसी से बसमतिया को इस्माईल ने अपने द्वार पर चढ़ने भी नहीं दिया।

'यह तो बसमतिया के साथ बहुत बड़ा अन्याय हुआ।'

'बहुत बड़ा अन्याय! और क्या, इस पर भी बसमतिया ने अपने को रबिया खातून कहना नहीं छोड़ा। आज भी कहती है। लेकिन कहे अपने को भले कुछ। काम तो अब करती है मैयुया वाला। क्या करती। सास-ससुर ने छोड़ दिया माय का द्वार लोटना ही नहीं था। नौड़ी के भी काम पर न तो हिन्दू रखने को तैयार थे, न तो मियाँ पट्टी के लोग। जब इसके लिए कोई नहीं रहा तब इसने सबको ही अपना बना लिया। पेट क्या न कराए। अब तो देख ही रहे हैं बाबूजी कभी सब्जी बेचती है, कभी अपने को। नजर घुमा कर देख न लीजिए।'

गर्बी दयाल ने कुछ इस तरह से मुझसे कहा कि मेरी आँखें एक बारगीही, अनायास बसमतिया की ओर पलट गई। मैंने देखा - बसमतिया अब तरकारियों से भरी डाली अपने माथे पर उठाकर एक ओर चल पड़ी थी और अधेड़ उम्र का एक आदमी, जो कुछ देर पहले सब्जी का मोल-भाव कर रहा था, अब वही कुत्ते की तरह बसमतिया को पीछिआता जा रहा था।

'सुरेनमा साला आक थू! ऐसे लोगों को तो कमर से काट कर अलग कर देना चाहिए।' गर्बी दयाल की टनटनाती गालियाँ तेज होने लगी थी। मुझे लगा। जैसे मेरे हृदय का सारा खून एक बारगी ही बलबला कर बाहर नकल आया हो और बसमतिया का सारा शरीर ही खून से लथपथ होने लगा हो।

पिता, माता, अग्नि, अतिथि और गुरू - मनुष्य को इन पाँचों की यत्नपूर्वक सेवा करनी चाहिए। इनकी सेवा से संसार में सब कुछ सुलभ हो जाता है।

अपने लिए सुख चाहने से नाशवान् सुख मिलता है और दूसरों को सुख पहुँचाने से अविनाशी सुख मिलता है। दूसरों के लिए सुख चाहने से अपने दुःख से दुःखी नहीं होना पड़ता है।

चार कविता

मनिका मोहिनी
नोयडा, उत्तर प्रदेश

अभिशप्त

जैसे तुम्हारा मिलना निश्चित था
वैसे ही निश्चित था तुम्हारा जाना।
अनिश्चय की स्थिति में भी
निभाए थे हमने सारे रीति-रिवाज
खाने को खाई थी कसमें
जीने को थे रात-दिन साथ-साथ।
हालाँकि हमें मालूम था
कि वादों का कोई अर्थ नहीं है
फिर भी किए थे
साथ जीने मरने के वादे
जैसे उनके बिना
प्यार की रस्म अधूरी रह जाएगी।
कुछ अधूरापन न रहे
प्यार से खुद को भर लो लबालब
पता नहीं, फिर कब मिलना हो
मिलना हो भी या नहीं
समय की अस्थिरता के चलते
हमारे मन की स्थिरता का क्या महत्व
हमारे बस में कुछ नहीं था
जो भी था काल के गर्त में समाया हुआ
हम तो केवल
प्यार करने के लिए अभिशप्त थे
सोच रहे थे
यह किसी देवता का वरदान है
समय की धारा बहा ले गई अपने साथ
हर वरदान को हर अभिशाप को
छोड़ गई यादों के ढेर सारे रेतकण
और कलपते हुए धूल के अम्बार।

संदिग्ध

जिन्दगी जो जी तुम्हारे साथ
आराम से जी।
लम्बा अकेलापन जब मिलता है
तब जिए हुए जज़्बात जज़्ब होते हैं
मन के अन्दर
और समझ में आता है
संबंधों का समीकरण
सही गलत का भेद।
अवचेतन से तब उठती हैं आवाजें
पगलाई सी धुन में
जिसे कहते हैं हम
अंतरात्मा की आवाज़।
दर्प के दंश का दाग दहकता है कभी
कभी पूजी जाती है परत परत प्रतिमा
कभी कुंठा के क्लेश
कभी पछतावे में पीड़ित प्राण
कभी सिरफिरे संवादों के बीच से
संवेदना लहराती है
चुलबुली चंचल चपल
मिष्टी मधुर कल्पना सी।
साथ जीते जो कभी सिर्फ प्यार था
मान की मनुहार था
जिसको पाने के लिए बेचैन थे हम
जिसको पाकर हो गए थे तृप्त
वह अलग होते ही क्यों संदिग्ध है
कौन सी थी वह कड़ी
जो कि जोड़े न जुड़ी
सोच का हर रास्ता अवरूद्ध है।

चुनौती

तुम्हारे बस का नहीं है
किसी व्यक्तित्व के वैविध्य को संभालना
तुम एक सीधी-सादी जिन्दगी जीने के आदी
एकरसता में रहने को श्रापग्रस्त
फिल्मी संगीत से आगे
तुम्हारी कोई रूचि नहीं
परिजनों के साये से अलग
तुम्हारी कोई नियति नहीं।
तुम्हें नहीं पता
रिश्तों से आगे भी होते हैं रिश्ते
त्यौहारों के अलावा भी
मनाए जाते हैं सम्मिलन
तुम अनजान इस बात से
कि जिन्दगी में हादसे भी होते हैं
जिनका अर्थ सीढ़ियों से फिसलना
या सड़क पर रपटना ही नहीं होता
जो मन और आत्मा की दीवारों से टकराते हैं
भीतर का सब कुछ विद्ध्वंस कर जाते हैं
तुम अपने सीमित संसाधनों के बलबूते
तुम अपने संकुचित दायरे के आश्रयी
जिन्दगी को अपने तरीके से रचने की
उम्मीद संजोए बैठे हो।
तुम्हारे सामने हैं चट्टानों सी अडिग अनगढ़
जोखिम भरी चुनौतियाँ
और एक दोस्ती का हाथ
साहस हो तो थाम लो उसे।

आक्रान्त

जब तुम निरीक्षण कर रहे थे
मेरे हर लिखे शब्द का
प्रेम में लिखे मेरे शब्द
संभवतः तुम्हें
किसी क्रांति का आभास दे रहे थे
तुम आक्रांत थे, प्रेम से या किससे
मालूम नहीं।
शब्दों के मायाजाल से भ्रमित
अपने आक्रोश को छुपाते हुए
तुम अचानक रचनाओं की
प्रशंसा में जुट गए थे।
तुमने उनमें कहीं पढ़ लिया था
कि मैं वर्तमान को जी रही थी
विस्मित, घृणित अतीत को नहीं
क्योंकि भूलने का वादा किया था
मैंने तुमसे बार-बार
जो हमारे बीच आए
अर्थ का अनर्थ करे
जो हमें उलझा के रखे
फालतू के द्वन्द में
उस रहस्य को रहस्य ही
दबा रहने दो काल-गर्त में
उसकी आब क्या अहमियत
न किसी प्रतिद्वन्द में
न ही किसी छंद में।

मुझे मत रोको

मुझे मत रोको, मुझे कहने दो।
जैसे बहती है नदिया कल-कल,
बिल्कुल उस निर्झर की गति से,
आज मुझे तुम बहने दों।
मुझे मत रोको, मुझे कहने दो।

आज मेरे अरमान बहुत,
चाह बड़े और राह कठिन,
रुक जाए वो इंसान नहीं,
फिर भी आज मैं कहती हूँ।
बहने दो उस दरिया की तरह,
जो खुद ही अपनी राह बनाए,
पत्थर का भी काट के सीना,
अपनी मंजिल को बढ़ती जाए।
हर दिन, हर क्षण, हर पल प्रतिपल,
मुझे उस दरिंया सा बहने दो।
मुझे मत रोको, मुझें कहने दो।

आज मेरे अरमान बहुत,
चाह बड़े और राह कठिन,
रुक जाए वो इंसान नहीं,
फिर भी आज मैं कहती हूँ।
बहने दो उस दरिया की तरह,
जो खुद ही अपनी राह बनाए,
पत्थर का भी काट के सीना,
अपनी मंजिल को बढ़ती जाए।
हर दिन, हर क्षण, हर पल प्रतिपल,
मुझे उस दरिंया सा बहने दो।
मुझे मत रोको, मुझें कहने दो।

भाते भी है राहो में,
अगर तेरी वाणी का शूल,
चल देती हूँ फिर भी हस कर
समझ के उन शूलो को फूल
बनकर सबसे ऐसे अंजान,
कि जग तो भरा पड़ा हैं उनसे,
सब जो हैं यहाँ नादान।
मुझें मत रोको, मुझें कहने दो।

है पतित पावनी जैसे यहाँ,
जो गंगा कहलाती हैं।
वो भी तो एक दिन बहकर ही,
अपनी मंजिल को जाती है।
और रंग कर सागर के रंग में,
खुद भी सागर हो जाती है।
बस उस निर्झरिनी गंगा की तरह,
की तरफ मुझे बढ़ने दो,
मुझे मत रोको, मुझें कहने दो।

मजबूत जहाँ में हर कोई,
और में इनसे अंजान नहीं।
फिर भी हर पल है यही दुआ,
सदा करें सबका कल्याण
पवन की उस निर्वाध गति से
आज मुझे तुम बहने दो।
मुझें मत रोको, मुझे कहने दो।

कुमारी प्रिया
रन्नूचक, भागलपुर, बिहार

गजल

बच्चू चौधरी 'अकेला'
भागलपुर

ज़रा सा गौर से पढ़लें हमारी अर्जियाँ साहिब
ज़हर खाकर मरी हैं रात में ही बेटियाँ साहिब

यहाँ तो रोज रावध सा कई खूँखार देखे हैं
उन्हींने अस्मतें लूटीं व लूटीं बस्तियाँ साहिब

मसीहों में लिखाकर नाम निकले भीड़ को लेकर
शहर को बन्द करवाते घरों की खिड़कियाँ साहिब

किसी की आबरू लूटें अँधेरा साथ दे देगा
गरीबों के यहाँ जलती नहीं हैं बिजलियाँ साहिब

अभी दिन के उजाले में गले से चेन छीने हैं
गये थाने लिखाने तो मिली हैं धमकियाँ साहिब

हमें इन्साफ देने अब अदालत में चले आयें
नही ंतो जल मरेंगे खुद जलाकर डिग्रीयाँ साहिब

नारी और समाज

संयुक्ता गुप्ता
भागलपुर

सृष्टि और समाज दोनों में नर और नारी की समान सहभागिता है। बल्कि कहा जाना चाहिए कि नारी की भूमिका / दायित्व अधिक है और महत्वपूर्ण भी। परन्तु, आधुनिक समाज में पुरूष का अस्तित्व है और प्रधानता भी। नारी अपने अस्तित्व के धरातल का संधान कर रही है, अपनी अहमिता के लिए संघर्षरत है। क्योंकि नारी शिक्षा के व्यापक प्रसार के बावजूद भी नारी का शोषण समाप्त नहीं हुआ है। समाज उसके सतीत्व, मानवता, त्याग, प्रेम, ममता आदि गुणों का आकलन नहीं करता। सगे-संबंधी एवं अन्य सभी निर्भय भाव से उस पर आक्रमण करते हैं। वे नारी के आत्मिक उत्कर्ष एवं विवेक को नष्ट प्राय कर देते हैं। समाज नारी को उसकी कमियों एवं दुर्बलताओं के साथ स्वीकार करता है। नारी अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सकती। उसकी रक्षा उसके पिता, पति या भाई करता है। यदि वे क्रूर हो जाये तो उससे बचने का उसे कोई उपाय नहीं। कारण, उसे वह अधिकार दिया ही नहीं गया। अगर दया करके कोई नारी की सहायता भी कर दे तो वह भी कलंक है जबकि मानवराशि के अस्तित्व को बनाये रखने का दायित्व स्त्री पर है। नारी की आत्मनिर्भरता के संदर्भ में परिवार और समाज की नकरात्मक सोच और प्रतिक्रिया को आसानी से देखा जा सकता है। नारी का संघर्ष ऐसी विषम परिस्थिति में गहन, गंभीर और बहुआयामी हो उठा है। वह इसलिए भी कि एक ओर एकाकी नारी है तो दूसरी ओर परिवार और समाज का संयुक्त आक्रमण। उसे सृष्टि और मानवता की रक्षा करनी है, अपनी ममता और अस्मिता की रक्षा करनी है। किन्तु समाज नारी को इस सकारात्मक दृष्टिकोण से नहीं देख पाता। यह समाज के दृष्टिकोण का दोष है। आत्म निर्भरता शब्द अर्थ के संदर्भ में जितना सीधा लगता है, नारी के संदर्भ में उतना ही टेढ़ा बनकर सामने आया है। आत्मनिर्भरता ने नारी के अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा के स्थान पर उसकी असुरक्षा को और अधिक पैना तथा बहुमुखी बना दिया है।

आज नारी का आत्म सम्मान स्थान-स्थान पर आहत हुआ है, उसके प्रति सहयोग, सहानुभूति क्या सद्‌भाव से भी कोई प्रस्तुत नहीं होता, चाहे वह परिवार हो या समाज। नारी के प्रति सम्मान भाव का अभाव इसलिए दृष्टिगोचर होता है कि "शिक्षा, अर्थ, स्वतंत्रता के बढ़ते दायरे में आत्मीयता, विश्वास और समर्पण सिमटता जा रहा है। ऐसी विषम और विकट परिस्थिति में नारी आत्म सम्मान की रक्षा का दायित्व स्वयं वहन कर रही है। वह आत्मसम्मान के विषाक्त एवं धृणापूर्ण वातावरण से स्वयं संघर्षरत है। पुरूष की काम-लोलुप दृष्टि नारी के आत्म सम्मान को बरबस क्षत-विक्षत करने पर तुली रहती है। वह नारी की असहाय स्थिति का अनुचित लाभ उठाना चाहता है। नारी के न मानने पर पुरूष की स्थिति आक्रमणकारी जैसी हो जाती है। स्त्री स्वातंत्र्य को उच्श्रृंखलता बता कर उसे पिंजरे में बंद करना पुरूष शासित समाज की नियति बनती जा रही है। ममता की थाली परोसने वाली और अमृतोपम स्नेह की वर्षा करने वाली नारी को, नेत्रों से दुःख-दर्द के आँसुओं के प्रवाह को मदिरा समझकर पान करने वाले दरिन्दों से होकर गुजरना पड़ता है। आत्मीयता की शीतल चाँदनी आज नारी के लिए मृग मरीचिका बनकर रह गई है। स्वतंत्रता का सूरज नारी के जीवन-संसार में स्वतंत्रता का कोई भाव नहीं जगा पाया।

एक स्वतंत्र और तथाकथित सभ्य समाज में आज नारी की त्रासद स्थिति बन गई है। जिसका एक मात्र कारण मानवता के गुणों का अभाव है। इसके अभाव में अराजकता एवं खौफ का साम्राज्य व्याप्त हो रहा है। मानवता के दृष्टिकोण से किसी भी व्यक्ति को शारीरिक यातना देना पाप है। किसी के भी प्रति निर्दय, अमानुषिक या अपमान जनक व्यवहार को भी अमानवीय ही कहा जाता है। जो अमानवीय गुणों से युक्त हैं वे मानवता के नाम पर कलंक हैं। ऐसे लोगों से मानवता शर्मसार होती है। हत्या, बलात्कार, अपराध, लूट-पाट, मार-पीट में संलग्न लोग इसी श्रेणी में आते हैं।

प्रजातांत्रिक मूल्यों के विकास के लिए भी मानवता के मूल्यों को प्रोत्साहित किये जाने की आवश्यकता है, क्योंकि विश्व में शांति व अमन चैन की स्थापना के लिए मानवता को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

प्रायश्चित

पी. एन. जायसवाल

इतिहास के शिक्षक हरिवंशजी हॉल में आकर कुर्सी पर बैठे और आँखें बंद कर लीं। उन्हें मिनट दो मिनट में शायद नींद भी आ गई होगी। उनकी ऐसी नींद से पूरा स्कूल परिचित था।

पांच मिनट के बाद मोली साहब (मोलबी साहब) आये। कई पलों तक हरिवंशजी को देखा और हाथ ऐसे चमकाया मानो कह रहे हों 'खाक गार्डिंग करेंगे। हेडमास्टर तक का डर नहीं है। अल्ला कैसे बचा लेते हैं जनाब की नौकरी।''

उन्होंने नाक-भों सिकोड़ कर सतर्कता से हॉल का निरीक्षण शुरू किया। जहाँ-जहाँ कागज का टुकड़ा मिला उठा लिया और खिड़की के बाहर फेंक दिया। वे नाक से बोलते थे। उनकी बातें सुनने के लिए खास ध्यान देना पड़ता था। इस कारण से छात्रों के बीच वे अक्सर हँसी के शिकार हो जाते।

''परीक्षा हॉल में जिसके पास चीट पकड़ा गया उसे हॉल से बाहर कर दिया जायेगा। इसलिए दो मिनट के भीतर जिसके पास जो है निकाल कर मेरे टेबुल पर जमा कर दो।'' उन्होंने परीक्षार्थियों को नसीहत दी।

''ठीक है सर चीट रख देते हैं। किताब से चोरी करने की इजाजत दे रहे हैं न?'- कोने में बैठा छात्र डेस्क में मुँह छुपा कर बोला।

''बतकटरी करता है? कौन बोला?''

छात्र नोंक-झोंक के मूड में आ गये। उनके डर से छात्र इस हिसाब से टोहका मारते थे कि पता नहीं चल पाये कहाँ कौन बोल रहा है।

''सर मेरे दो चार बेंच पीछे से कोई बोला है।''

''राजा हरिश्चन्द्र बनने का दिखावा करके चापलूसी करता है। तू ही तो नहीं बोला है?''

''कसम से सर हम कुछ नहीं बोले हैं।'' सुरिन्दर खड़ा हो गया।

''बैठ-बैठ, ज्यादा चालू मत बन। हमारा वार्निंग है, अभी से परीक्षा खत्म होने तक कोई भी चाँय-चुँय नहीं करेगा।''

उन्होंने ऊँगली उठाकर छात्रों को चेतावनी दी।

''अगर कर दिया तो?''

''उसको मुर्गा बना देंगे।''

''कुकरू कूं...'' किसी ने पीछे से मुर्गा की बाँग दी।

''हमसे मजाक करता है? जबह् कर दूंगा।... अब कोई भी 'चूं' तक नहीं करेगा।''

''यह 'चूं' क्या होता है सर?'' सुरिन्दर के आगे बैठे एक छात्र ने अपना सिर छिपाकर पूछा।

''...'चूं' का मतलब कौन नहीं जानता है?''

''चूं-चूं का मुरब्बा होता है सर।'' मेरे पीछे से एक आवाज आयी।

''यह चुग्द् किस डाल से बोला? जरा अपना तो नाम बता बरखुरदार। तब तें को पता चल जायेगा कि मोली साहब तेरा सेंटप कैस रोकते हैं। पढ़ाई-लिखाई का सत्यानाश कर दिया। परन्तु कोई बात नहीं,.... ढेरों बी.ए. पास करनेवाला शुद्ध नहीं बोलता है, चुनांचे तें लोगों को गलत बोलने की सजा नहीं दूंगा। अरे चग्दओं, मुरब्बा 'चों-चों' का होता है। 'चूं-चूं' का नहीं।''

''आपने खाया है सर? बहुत मजादार होता है क्या?''

हँसी का फौवारा फूटा।

''बेबकूफो, इतनी जोर से हँसता है? आवाज ऑफिस तक जाती होगी।'' डर से 'पुर्र-पुर्र' करते हुए वे दरवाजे की ओर दौड़े।

बरामदा झांकने के बाद चेहरे पर सुकून का भाव लिये वापस होकर कहा ''तुमलोगों की अक्ल घास चरने चली गई है? अरे सब्र से बैठो और परीक्षा दो। सेंटप नहीं हुए तो घरवाले घर चढ़ने नहीं देंगे।''

''पों..ों..ों.।' हॉल के बीच से एक आवाज आई।

''इडियटों।'' उनका गलचुटका चेहरा गुस्से से उफनाया।

''सर आपके पीछे डेडमास्टर साहब...।'' कोने से कोई फुसफुसाने के अंदाज में इतने ज़ोर से बोला था कि मोली साहब ने सुन लिया।

घबराकर वे पीछे मुड़े। कोई नहीं था।

'पों...ों..'

''खामोश...'' अपना-अपना 'पों-पां' बंद कर और एकदम खामोश हो जा। यह परीक्षा हॉल है। तुम लोग इसे सिनामा तो नहीं समझ रहे?''

''नई फिल्म कब लगेगी सर?''

''तब तेरा जनाजा उठेगा। कोई एक नहीं,... तुम सब चोट्टे हो। पता नहीं है तो बता देता हूँ कि मैं ही रिजल्ट बनानेवाला हूँ। किसी को भी सेंटप नहीं करूंगा।''

''तब इस हॉल के पचास छात्रों का आप अचार डालेंगे सर।''

हरवंशजी की नींद टूट गई। उन्होंने अंगड़ाई लेकर कहा। ''अरे मोली साहब आप चुप हो जाइये। लड़के भी शांत हो जायेंगे।''

''टन...टन..टन...टन...'' परीक्षा की पहली घंटी के साथ उत्तर पुस्तिका आ गई थी। उसे छात्रों के बीच बाँटकर दोनों शिक्षक हॉल में चहलकदमी करते हुए आगे जा रहे थे तभी पीछे से आवाज आई ''ऐ देखो, उसकी उत्तर पुस्तिका पर पहले से ही परीक्षा में आनेवाले प्रश्नों के हल बने हुए हैं।''

मोली साहब घिरनी की तरह घूम गए। हड़बड़ा कर पूछा ''किसकी कांपी

पर प्रश्नों के हल बनाये हुए हैं?''

हॉल एकदम शांत रहा।

''.....अबे, अब कोई चुग्द़ बोलता क्यों नहीं है? चल खड़ा हो जा।''

अधिकांश छात्र खड़े हो गए।

''अम्मा.., इतने सारे लड़कों की कांपियों पर....? उनका चेहरा पसीने से तर-बतर हो गया।

''हमलोगों की कॉपियां सादी हैं सर।'' खड़े छात्रों ने समवेत स्वर में कहा।

''तब तें सब खड़े क्यों हो गये?... सीट डाउन।...जिसकी जिसकी कॉपियों पर हल लिखे हुए हैं सिर्फ वो ही खड़ा होगा।''

एक भी छात्र खड़ा नहीं हुआ।

''अरे मोली साहब किसी की कापी पर उत्तर नहीं लिखा है। आप शान्त हो जाइये।'' हरवंशजी ने उन्हें समझाया।

''आप जब से आये हैं कुंभकरणी नींद ले रहे हैं। हम तो हॉल के इनचार्ज हैं जनाब। सो नहीं सकते। कुछ भी गड़बड़ी हुई तो जबाव-तलब हमसे होगी। आप तो पूँछ झाड़कर चल देंगे।''

इसी समय स्कूल के एक अन्य शिक्षक ने हॉल में प्रवेश किया और प्रश्न पत्रों का लिफाफ मोली साहब के हाथ थमाते हुए कहा '' यहाँ शोर-गुल हो रहा है मोली साहब। हेडमास्टर साहेब नाराज हो रहे हैं।''

प्रश्न-पत्र पहुँचाने वाले शिक्षक ने मुस्कुराकर हरवंशजी को देखा और उनसे मुस्कान में ही जबाव पाकर मोली साहब पर एक नजर डालते हुए चले गये।

हेडमास्टर साहब की नाराजगी के बारे में सुनकर मोली साहब चिंतित होकर 'धम्म' से कुर्सी पर जा बैठे। गुस्से से भरा चेहरा लिये छात्रों की ओर देखा और कहा ''अब जिसकी आवाज सुनाई दी उसे गर्दनिया देकर बाहर कर दूंगा।''

वे प्रश्न-पत्रों की गिनती करने लगे।

''कुल पचास प्रश्न पत्र हैं। छात्रों की संख्या कितनी है जनाब?''

''पचास।''

''तो ठीक है।''

उन्होंने पचीस प्रश्न-पत्र हरवंशजी के हाथ दे दिया और बचे प्रश्न पत्रों की गिनती करने के बाद उसे पढ़ने लगे।

''जरा जोर से पढ़िये तो हमसब भी जान जायें कि कौन सा थ्योरम आया है सर।''

''नानसेंस कहीं का, हिन्दी के प्रश्न-पत्र में थ्योरम होता है?''

''बकबास पर बकबास किये जा रहा है।''

''बकबास नहीं है सर। अब हिन्दी के प्रश्न-पत्रों में मैथमेट्क्सि के प्रश्नों को स्वीकृति मिल चुकी है।''

''अभी मैथमेट्क्सि की ही परीक्षा है, फिर हिन्दी के प्रश्न-पत्र का लिफाफा कैसे आ गया। ''एक कोने से आवाज आई।

वे बौखलाकर हरवंशजी को देखने लगे। पूछा ''वाकई?..अभी मैथमेट्क्सि की परीक्षा है? इसका मतलब प्रश्न-पत्र आउट हो गया जनाब?''

''कौन-कौन बदमाशी कर रहा है? अब जिसकी आवाज सुनाई देगी उसे परीक्षा से निकाल दिया जायगा।'' कड़ा रूख लिए हरवंशजी ने हॉल में नजर दौड़ायी।

''टन्न...'' घंटी बजी। मोली साहब जल्दी-जल्दी प्रश्न-पत्र बाँटते हुए मुझे और सुरिन्दर को देकर पीछे की ओर चले गए।

''अरे एक प्रश्न-पत्र घट कैसे गया? हमने पूरे बीस की गिनती की थी। जिसके पास दो चले गये?'' एकदम पीछे से मोली साहब की आवाज आई।

कोई कुछ नहीं बोला।

''सभी अपना-अपना प्रश्न-पत्र चेक करो।''

मिनटों गुजर गए। किसी ने प्रश्न-पत्र वापस नहीं किया। जिस छात्र को प्रश्न-पत्र नहीं मिला था उसने कहा ''जल्दी कीजिये सर मेरा समय बरबाद हो रहा है।''

''तें राजिन्दर प्रसाद है का रे? मिनट में कांपी भर देगा। जादा लिखाड़ू है तो बगल के लड़का का प्रश्न-पत्र देखे। मैट्रिक की परीक्षा में ऐपियर होने के लिए एग्जाम दे रहा न? तेरे को सेंटप हो जाने की उम्मीद है का?''

मोली साहब छात्रों को चेक करने लगे थे। दो प्रश्न-पत्रों को एक साथ सटे होने की संभावना थी ही।

''पकड़ाया।'' पूरे हॉल में मोली साहब की आवाज गूँजी।

''हमने नहीं देखा था सर!'' सुरिन्दर ने खड़े होकर सफाई दी।

मोली साहब का गुस्सा उबल गया। आव देख न ताव सुरिन्दर के गाल पर जोर से तमाचा जड़ते हुए कहा ''हम बार-बार पूछ रहे हैं और तें कहता है कि हमने देखा नहीं था। हर टाईम मजाक करता है? अभी हम तें को बताते हैं कि मोली साहब का माने क्या होता है।''

उन्होंने सुरिन्दर की कांपी और प्रश्न-पत्र उठाया और उसका हाथ पकड़कर कहा ''चलो हेडमास्टर साहब के पास।'' अचानक, सुरिन्दर ने गजब की फुर्ती के साथ मोली साहब की लंबी-घनी-खबूसूरत काली दाढ़ी को अपनी मुट्ठी में कस कर पकड़ी। झटके मार मारकर हिलाई और पूरी ताकत से उनके गाल पर एक तमाचा जड़ दिया।

जबूह होते बकरे की तरह गरगराते दो बेंचों के बीच मोली साहब जा गिरे।

सुरिन्दर दौड़ता हुआ भाग गया।

परीक्षा हॉल सन्न था।

उसी दिन शाम को मैं उसके घर गया था। पूछा था ''तुमने मोली साहब के साथ बदतमीजी क्यों की?''

काफी देर तक मेरा मुँह देखने के बाद उसने कहा ''पता नहीं हमने ऐसा

क्यों किया। परन्तु यह सच है कि हमने दो प्रश्न-पत्रों को सटे हुए देखा ही नहीं था। मुझे खुद ही समझ में नहीं आ रहा है कि हमने वह सब कैसे कर दिया। एक गुस्सा पूरे आदमी को एक बार में ही गील जाता है।''

''कल की परीक्षा दोगे?''

''मैं मोली साहब को मुँह दिखने के काबिल भी नहीं हूँ। अब मेरे लिए उस स्कूल में कोई जगह नहीं बची।''

''फिर कहाँ पढ़ोगे?''

''देखते हैं।''

जब भी मौका मिलता है घर आ जाता हूँ। गाँव आना मुझे हमेशा अच्छा लगता है। यहाँ जीवन नदी की तरह बहती है। कदमों से कदम मिलाकर सच्चाई चहलकदमी करती है। यहाँ की पछुआ और पुरवैया बूढ़े मन को भी जवान कर देती है। जीवन की कलात्मकता को आंदोलित करती रहती है। गाँव आने-जाने के बीच सुरिन्दर से कभी-कभार भेंट होती है। उसे देखते ही मैं विचलित हो जाता हूँ। मेरे क्लास में वह हमेशा अव्वल आता था। उसकी पढ़ाई पर स्कूल के शिक्षक हमेशा संतुष्ट रहते थे। उसके पिता हम से कहा करते थे कि मेरा सुरिन्दर एक बड़ा ऑफसर बनेगा। काश वह कुछ बन जाता। उस घटना ने उसके मन को इतना मथ दिया कि जहाँ उसके पिता खड़े थे वहीं रूक गया वह या फिर जीवन के दो चार कदम पीछे ही। दरवाजे पर अपना पुस्तैनी धंधा करने लगा। उसका बूढ़े पिता मुझे देखते ही विक्षिप्तों की तरह कह उठते थे ''पढ़ा फारसी बेचे तेल देखो रे कुदरत का खेल।''

दूर तबादला हो जाने के कारण से काफी लंबे अरसे के बाद गाँव आया हूँ। शाम में चौपाल पर पूछ-ताछ के दौरान पता चला कि सुरिन्दर के पिता का स्वर्गवास हो गया। थोड़ी देर बाद वह भी चौपाल पर आ गया। मुझ पर नजर पड़ी तो बगल में आकर बैठा।

''कैसे हो?''

''ठीक हूँ। वहीं ठुक-ठुक कर रहा हूँ।

''और तुम्हारे बच्चे?''

''बड़ा बेटा उसी स्कूल में पढ़ रहा है। मोली साहब अब स्कूल के हेडमास्टर बन गए हैं और मेरे बेटे से वे बेहद प्यार करते हैं।'' कहते-कहते उसकी आँखें डबडबाकर समंदर हो गई।

परिचय

विष्णु प्रसाद मंडल 'विकल'
भागलपुर

परिचय अपना बतलाता हूँ।। 1।।
मरूभूमि में भटक रहा हूँ, नाच नचाती मृगतृष्ण है,
कंठ असत्य अवरूद्ध हुआ, सूख गई मेरी रसना है।
दुर्दम निदाघ की ज्वाला से है, हृदय विदीर्ण हुआ जाता,
सूखी-टूटी बल्लरियों पर, क्योंकर प्रसून फिर फिल पाता।
जलनिधि के तट पर आकर भी, मैं प्यासा रह जाता हूँ। ।परिचय.........।।

छिले गये चरण, अविचल पग हैं, इन कठिन कटीली राहों से,
पग-पग पर मैं टकराता हूँ, पत्थर की मूक शिलाओं से।
जीवन की टेढ़ी पगडंडी, आँखों से आझल हो जाती,
चला जहाँ से पुनः वहीं पर, घुमा-फिराकर फिर लेआती।
मैं भटक रहा हूँ इधर-उधर, पर मंजिल देख न पाता हूँ। ।परिचय...........।।

घिरी घटा घनघोर तिमिरमय, आशा की न कोई किरण है,
घटाटोप है अँधकार औ साँय-साँय कर रहा पवन है।
राह-कुराह कुछ नहीं दिखता, दिकभ्रम भी होता जाता है,
चलना है आगे या पीछे, दुविधा में मन भरमाता है।
कठिन डगर घनघोर तिमिर में, पग-पग पर ठोकर खाता हूँ। ।परिचय..........।।

छलक रहा मदिर का प्याला, दुनिया क्या है मधुशाला,
नित नवीन ही केश बदलकर, आता-जाता पीने वाला।
पत्र दिये कर में हँसकर, यूँ पिला रही है मधुबाला,
पायल की स्वर लहरी पर, बस झूम रहा है मतवाला।
पयल की स्वर लहरी पर, बस झूम रहा है मतबाला।
''विकल'' हृदय तृषणा ही तृष्णा, मैं प्यास बुझा न पाता हूँ। ।परिचय.......।।

ग़ज़ल

अशोक मिजाज
सागर, मध्य प्रदेश

बहुत से मोड़ हों जिसमें कहानी अच्छी लगती है
निशानी छोड़ जाए वो जवानी अच्छी लगती है

सुनांऊ कौन से किरदार बच्चों को कि अब उनको
न राजा अच्छा लगता है न रानी अच्छी लगती है

खुदा से या सनम से या किसी पत्थर की मूरत से
मुहब्बत हो अगर तो जिंदगानी अच्छी लगती है

पुरानी ये कहावत है सुनो सब की करो मन की
खुद अपने दिल पे खुद की हुक्मरानी अच्छी लगती है

ग़ज़ल जैसी तेरी सूरत ग़ज़ल जैसी तेरी सीरत
ग़ज़ल जैसी तेरी सादा बयानी अच्छी लगती है

गुज़ारो साठ सत्तर साल मैदाने अदब में फिर
कलम के ज़ोर से निकली कहानी अच्छी लगती है

मैं शायर हूँ ग़ज़ल कहने का मुझको शौक है लेकिन
ग़ज़ल मेरी मुझे तेरी जुबानी अच्छी लगती है

हाइकू

अनंत आलोक
सिरमौर, हिमाचल प्रदेश

1.
उतरे घन
खिलखिलाए वन
हरित तन।

2.
श्वेत ओढ़नी
तन हरिताम्बर
पाँव में गंगा।

3.
फौजी साजन
रिमझिम आँगन
रोए कंगन।

4.
बेसुध झड़ी
जख्म हरे रिसते
धरणी सड़ी।

5.
छत गगन
जिन धरा बिछोना
रोज का रोना।

6.
छत गगन
जिन धरा बिछोना
उन्हें क्या खोना।

7.
माघ नहाय
हीरे जड़ित हार
धरा श्रृंगार

8.
कंठ संगीत
हृदय विद्या वास
ज्ञान उज्जास

9.
माघ की धूप
माँ का आँचल गर्म
स्पर्श प्रेमिका।

दूसरों के प्रति हमारी बुरी भावना होने से उसका बुरा होगा - यह निश्चित हीं है पर हमारा अन्तःकरण तो मैला हो ही जायगा, जिससे हमारा बुरा तत्काल हो जायेगा।

माँ मुझे मत मार

मोनिका जैन ''पंछी''
भीलवारा, राजस्थान

गर्भ में पलती बेटी, पल-पल करे गुहार
माँ! मुझे मत मार, ओ माँ! मुझे मत मार

मैं भी दुनिया देखूँगी, चिड़ियाँ सी मैं चहकुंगी
तेरे आँगन की बन फुलवारी, फूलों सी मैं महकुंगी

गुड़ियों संग में खेलूँगी, कोयल सी मीठी बोलूँगी
पायल की छम-छम करती माँ, तेरे आँगन डोलूँगी

बन जाऊँगी माँ मैं तेरे आँगन की झंकार
माँ! मुझे मत मार, ओ माँ! मुझे मत मार

मिश्री सी बोली घोलूँगी माँ तेरे कानों में
आँसू ना कभी आने दूँगी माँ तेरी आँखों में,

नन्हें हाथ बटाऊंगी माँ तेरे कामों में
मलहम सी लग जाऊँगी माँ तेरे घावों में

तेरे सुख की खातिर दूँगी अपना तन-मन वार
माँ! मुझे मत मार, ओ माँ! मुझे मत मार

तेरे आँगन की तुलसी बन मैं बढ़ती जाऊँगी
पूजा की कलसी का पानी बन बहती जाऊँगी

तेरे घर आँगन की माँ शोभा में बढ़ांऊगी
बेटी, बहन, माँ, पत्नी हर रिश्तें को निभाऊँगी

रोशन कर दूँगी घर आँगन बन सूरज की दमकार
माँ! मुझे मत मार, ओ माँ! मुझे मत मार

तेरे भीतर नन्हीं जान हूँ माँ
तेरी ममता का सम्मान हूँ माँ

स्नेह प्यार और दूलार की
मैं ही तो पहचान हूँ माँ

बन जाऊँगी माँ मैं तेरी खुशियों का संसार
माँ! मुझे मत मार, ओ माँ! मुझे मत मार

मेरे सूने आँगन में

रोहित पगारे
नोयडा, उत्तर प्रदेश

तुम रंग बिरंगी तितली, मैं बदरंग सलेटी बादल
तुम दूर दूर उड़ती जाती, मैं देख होता पागल।

तुम हरी भरी महकी धरती, मैं बिन तारों का अम्बर
तुम फूलों की पंखुरी नरम, मैं सूखा पत्ता जर्जर।

तुम इठलाती पंखों में, मैं गतिहीन निश्चेष्ट किया
तुम सुन्दरता की हो मिसाल, मैं बन बन बिगड़ा रूपाकार।

तुम जीवन मनमोहिनी, मैं पञ्ज तत्व विहीन
तुम मोहक आकर्षक, मैं सादा सा रंगहीन।

तुममें खुशबु बसी हुई, मैं निर्गध फूल जंगल का
तुम लहर लहर लहराती, मैं निश्छल बेचैन हदय।

तुम नाज़ भरे अंदाजों में, मैं अनगढ़ बेसुरताल
तुममें सम्मोहन की शक्ति, मेरी तुममें ही अनुरक्ति!

तुम अद्धुद मायावी तुम, मैं बस बेढंगा बेचारा
तुम जैसे हो एक चमत्कार, मेरे जीवन के आँगन में।

मेरे मन के द्वार पर, तुम रची हुई रंगोली सी
तुमने छोड़ा संगीत मधुर, मरे सूने संसार में।

आदमी

गिरिजा शंकर मोदी

(1)

यह वक्त अब
आदमी का नहीं रहा,
आदमी बन्द हैं अब
भयावह मौसम के
गहराते अँधेरे में

आदमी का चिड़िया मन
सुगंध और मकरंद
शिकार और अब
मौसम के बहेलियों का

दिल अब आदमी का
भूना जाता है अलग
और आँखें उसकी निकाल
जड़ दी जाती है बाहर
दरवाजे पर -

खबरदार है अब
बेटियों का बाहर निकलना
मुंडेर पर बाज
और नीचे भेड़िया है -

जंगल ही जंगल है अब
दरबाजे से बाहर
और शिकार हैं
हिरणों के झुण्ड
सीगों के उलझ जाने से

लाल की पोथी में
बन्द है आदमी अब
और मरता है
गिद्धों की टोली के
दस्तक दर दस्तक पर हर क्षण

इस बदसूर त होते मौसम की
खूंखार दुनिया में अब
आदमी की दुनिया का
क्या होगा -

(2)

आदमी इस देश का
अब ना तो देश रहा
न माँ, न मंदिर
न शंखनाद

जैसा वह था
वैसा अब नहीं रहा
अब आदमी में
न पल्लवित होता है

कोई फलदायक मौसमी बिरवा
और न धरती को ढ़क देने वाले फूल से
कोई हरश्रृंगार
यह न तो कोई

खुशबूनुमा मौसम रहा
और न बसन्त की पुकार
आदमी में न रहा अब
कोई चन्दन वन

और न पहाड़ी प्रान्तर से गुजरती
स्वच्छ पतली जीवन जल धार
आदमी में उगती है अब
फसल बारूद की

बिछते है सुरंग बारूद की
उड़ा देने हिमालय को
ध्वस्त कर देने
स्त्रोत गंगोतरी के -

यहाँ न उगता है
अब आदमी
न इनका बादल
और न कोई आकाश गंगा
देश जो अब
आदमी न रहा
उगता है
आदमी की शक्ल में
नुकीले चट्टान
देश अब आदमी का नहीं
चट्टानों का बन रहा है।

(3)

बातें अब आदमी की
पहाड़ी प्रतिध्वनि बन
आदमी को ही चीरती
जंगलों में खो रही है,
जहाँ झूलता रहता है
एक चेहरा पिशाच का
मरघट की श्मशानी उदासी के बीच
आकाश में समाते

अँधियारे वृक्ष में
आदमी आज
रेगिस्तानी रेत के टीले का वृक्ष है
एक सिमटा हुआ वजूद

एक ढूह / एक भग्नावशेष
जहाँ समाती जाती है
उसके बहुत अन्दर
उसके बहुत अन्दर

भाँय-भाँय करती दोपहर
ग्रीष्म का / निरन्तर...
आदमी लगता है

अब पुनः
भोगने लगेगा
अपने अन्दर
एक आदिमानव

एक जंगल
ग्रीष्म, वर्षा और शरद

स्वाहा

उमाकांत भारती
भागलपुर

पैंसठ साल की उम्र में सुदर्शन की इश्कबाज़ी की कहानी वर्षों तक काफी चर्चा में रही।

एकाध साल सुलेखा को पति की वेबफाई की भनक नहीं मिल पायी थी। वह गुपचुप रेखा से मिलता था। बिल्कुल बेअवाज। लेकिन कहते हैं न औरत की छठी इंद्री बड़े ही कमाल की होती है। पति छिपाने की कितनी भी चेष्टा क्यों न कर ले, पत्नी उसके बात-व्यवहार से भी सच्चाई तक पहुँचने का सूत्र पकड़ लेती है।

सुदर्शन के बात-व्यवहार में अचानक काफी मधुरता आ गई थी। दो-तीन दिनों में दाढ़ी-मूँछें बनवानेवाला उसका पति रोज-रोज दाढ़ी-मूछें बनवाने लगा। सर के सफेद केश भी काले हो गए।

यह सब देखकर उसकी छठी इंद्री जागृत हुई थी। बनठन कर रहने का शौकीन हो गया वह! पहले वह अपने लिए तीन-चार सेट कपड़े से अधिक रखने की दरकार नहीं समझता था। पर्व-त्यौहार और रिश्तेदारों की पार्टी जैसे मौके पर पहनने के लिए नये वस्त्र नहीं बनवाना चाहता था वह!

वैसे रुपये-पैसे की कमी नहीं थी। बीस हजार रुपये पेंशन मिलता था और मकान-भाड़ा पंद्रह हजार रुपये। बीस लाख 'फिक्स डिपोजिट' भी था। बेटा-बेटी, पुत्रवधू और पोता-पोती से भरापूरा परिवार था।

सुदर्शन के साथ बच्चों को कहीं आने-जाने में लज्जा
बड़े भी दबी जबान में असंतोष जताते, लेकिन खुलकर नहं

उनकी पोती लक्की बड़ी चंचल और बातूनी थी।
दिन कॉलेज से घर आने पर उसने सुदर्शन से कहा
''दादाजी! आप अच्छे सूट और चमचमाते जूते पहनेंगे
तभी आपके साथ बस-स्टॉप आया-जाया करूँगी।''

उस दिन उनके पहनावे को देखकर लक्की की फ्रेंड
उन्हें घरेलू नौकर समझ लिया था। इससे उसकी भावना अ
हो गई थी।

''मैं दिखावा नहीं करता। सादा जीवन और उच्च
अभी तक मेरे जीवन का सार यही था, लेकिन अब इस
आदर्श में थोड़ा बदलाव लाऊँगा।''

दूसरे दिन से ही उनका सादा जीवन रंगीन हो गय
ने समझा उनमें यह बदलाव लक्की की वजह से हुआ, लेकि
तो दूसरा ही था।

रेखा भी यही चाहती थी। दोनों की उम्र में त
अधिक का अंतर था। इसलिए होटल के बुकिंग रजिस्
संबंध कभी बेटी तो कभी पोती दर्ज कराना पड़ता था। रिस्पेनिस्ट और बैयरे की आँखों में ढेर सारे अनकहे सवाल होते। वह सुदर्शन से कहती - 'इन्हें शक हो गया है। डर लग रहा है मुझे!'

सुदर्शन को भी पकड़े जाने का अंदेशा रहता था लेकिन ऊपर से कहता - 'घबड़ाओ नहीं। जरूरत पड़ी तो मैनेज कर लूंगा।''

फिर भी रेखा बार-बार उनसे कहती थी - 'फेशनेबुल कपड़े पहनिए न! अच्छे लगेंगे। जवान दिखेंगे।'

उसकी इच्छा के आगे वे झुक गए थे, लेकिन अपनी खाल से बाहर निकलने का कोई बहाना उन्हें नजर नहीं आ रहा था। घरवाले क्या कहेंगे? उनके प्रश्न का क्या उत्तर देंगे?

उस दिन लक्की की धमकी से उन्हें रास्ता मिल गया।

लक्की खुश हो गई थी।

रेखा ने मुस्कुराते हुये उनसे कहा - 'आज बहुत स्मार्ट लग रहे हैं। ऐसे ही कपड़े पहना कीजिए।'

सुलेखा ने भी बदलाव का स्वागत किया, लेकिन बुझे मन से।

कभी उसका भी मन करता था - 'पति के साथ घूमे फिरे। पार्टियों में
हो।' लेकिन सुदर्शन के दोयम दर्जे के पहनावे से उसका
उत्साह ठंडा पड़ जाता था। हर पत्नी की तरह उसकी भी
ा होती थी - 'पति स्मार्ट दिखे।' उसने भी सुदर्शन को
दलने की कोशिश की थी, लेकिन व्यर्थ! उसने अपने लिए
थोड़ी - सी खुशी ही तो मांगी थी। उस दिन से उस पर
'स्मार्टनेस' का जिन्न सवार हो गया।

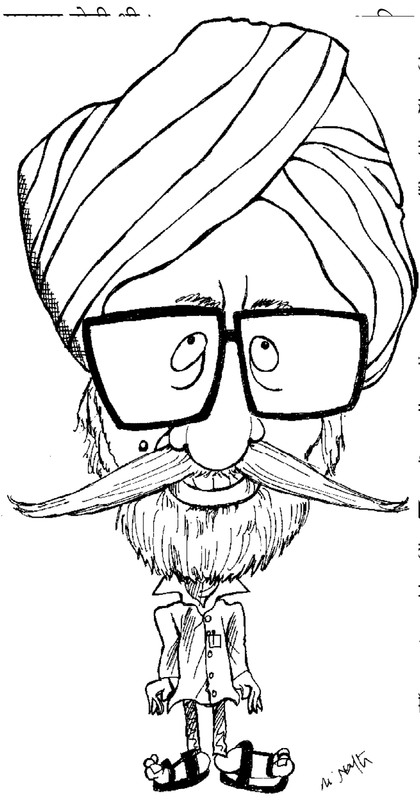

सदुर्शन 'जेन्टस पार्लर' में अपना 'मेक-अप'
भी करवाने लगा। एक नयी आदत भी उसकी दिनचर्या
जुड़ गयी। घर से घंटों बाहर रहने लगे। सुलेखा पूछती,
ावाब मिलता - 'फलना के घर।'

नित्य ही नये-नये नाम और नये-नये काम। रात में भी घर
ा बाहर रहने लगे। सप्ताह में एक-दो बार टूर पर जाने
लेखा ने उनसे पूछा - 'अचानक काम का बाढ़ कैसे आ
ा कहीं आते-जाते नहीं थे।'

हँस पड़ा।

ं इतने सवाल?

'क्योंकि मुझे शक हो रहा है। आपको रेखा के साथ

बाजार में देखा गया है। कौन है रेखा?'

सुदर्शन पत्नी के सवाल से घबड़ा गए।

'मैं नहीं जानता किसी रेखा को।'

सुलेखा को पति की बातों पर यकीन नहीं हुआ।

'आप मुझे धोखा तो नहीं दे रहे हैं?

'नहीं। ऐसा सोचना भी नहीं।'

सुलेखा चुप हो गई, लेकिन चुपके-चुपके वह सुदर्शन पर कड़ी नजर रखने लगी।

पैसे भी गायब होने लगे। महीने में पच्चीस-तीस हजार। कहाँ खर्च करते हैं इतने? उसने पूछा था।

'होटल का किराया। खान-पान। ट्रेन-बस भाड़ा। इसी सब में।'

'आपके साथ मैं भी जाया करूँगी। जहाँ भी आप जाएंगे, मैं भी जाऊँगी। ले चलेंगे न।'

सुदर्शन समझ गया कि सुलेखा के शक की जड़ काफी गहरी है। पत्नी साथ रहेगी, तो वह मौज-मस्ती कैसे करेगा? वह सोचने लगा।

'तुम्हारे पैर में दर्द रहता है। वर्षों से कहीं आती-जाती नहीं। कैसे चलोगी?

'लंगड़ी थोड़े ही हो गई हूँ।'

'ठीक है। चलना।'

'लेकिन वह कभी भी पति के साथ नहीं गई, क्योंकि उठने-बैठने और चलने-फिरने में उसे काफी कष्ट होता था। इसलिए अधिकांश समय वह बिस्तर पर ही पड़ी रहती थी। पति की चौकीदारी करने की उसकी तमन्ना धरी की धरी रह गई। लेकिन एक दिन वह अपनी व्याधियों की उपेक्षाकर 'शिव होटल' पति को रंगे हाथ पकड़ने चली ही गई। उस दिन उसकी पोती लक्की कॉलेज बस से जब घर लौट रही थी, तो उसने सुदर्शन को 'शिव होटल' में प्रवेश करते देख लिया था। पहले तो लक्की ने इसे अपना भ्रम समझा, क्योंकि उसे मालूम था कि दादाजी पाँच दिनों के लिए टूर पर उसी दिन कहीं गये हुए थे। लेकिन जब उसके छोटे भाई मुकेश ने उससे कहा - ''वे दादाजी ही हैं। मैंने उनका मुँह देखा था।'' तब भ्रम खत्म हो गया।

घर पहुँचते ही लक्की ने यह बात सुलेखा को बतलायी।

मुकेश ने भी कहा - 'दादीजी! मैंने देखा था दादाजी को। उनके साथ उनकी गर्ल-फ्रेंड भी थी।'

तब सुलेखा को पक्का विश्वास हो गया। 'आज मैं उन्हें छोड़ूँगी नहीं। फैसला होकर रहेगा - आर या पार।'

वह बिना अपने कपड़े बदले ही लक्की और मुकेश को साथ लेकर घर से तुरंत निकल पड़ी।

सुदर्शन अपनी गर्ल-फ्रेंड रेखा के साथ शिव होटल के कमरा नम्बर 26 में ठहरा हुआ था। होटल के रजिस्टर पर संबंध-कॉलम में 'पति-पत्नी' दर्ज था।

पति को बेनकाब करने के लिए उसे साबूत मिल गया था।

वह गिरते-पड़ते कतरा नं. 26 के पास पहुँची। वह कमरा अंदर से बंद था।

उसने तुरंत ही 'कॉल-बेल बजायी। घंटी बजी, लेकिन दरवाजा नहीं खुला। अंदर तेरा-मेरा और मेरा-तेरा चल रहा होगा। मन में यह विचार-प्रवाह उठते ही उसने खींजकर 'कॉल-बेल' का स्वीच तब तक दबाये रखा, जबतक दरवाजा खोला नहीं गया।

दरवाजा सुदर्शन ने खोला था।

वह काफी झल्लाया हुआ था, लेकिन पत्नी और पोता-पोती पर नजर पड़ते ही उसके शरीर का रोआँ गिर गया था और मुँह खुला का खुला रह गया ''तो आपने शादी भी कर ली? कब और कहाँ हुई शादी।''

''बाहर तमाशा खड़ा मत करो। अंदर आओ। तुम्हें तुम्हारे प्रश्नों का जवाब मिल जाएगा।''

सुलेखा अंदर नहीं गई। तब सुदर्शन ने उसका हाथ पकड़कर उसका मनुहार करते हुए कहा - ''आओ न, सुलेखा ने उसका हाथ झटक दिया - 'मुझे मत छुइये।''

''क्यों ?''

''अब आपका मुझ पर कोई अधिकार नहीं रहा।''

''मैंने तुम्हारा त्याग थोड़े ही किया है। अभी भी तुम मेरी ही पत्नी हो।''

तब वह अधिकार-भाव से कमरे में गई।

'डबल-बेड' पर रेखा बैठी हुई थी।

वह साधारण शक्ल-सूरत की अठारह उन्नीस साल की दुबली पतली लड़की थी। चेहरे पर भारी मेक-अप! तन पर काफी महंगे लिवास। गले में सोने का भारी हार। नाक-कान में स्वर्णाभूषण! ऊंगली में हीरा जड़ित सोने की अंगूठी।

''तो इसी 'देवी' पर चढ़ाया जा रहा था चढ़ावा। छोकड़ीबाजी में आपने हमें कंगाल कर दिया।''

पति के पतितपने को देखकर उसका मन घृणा और आवेश से उबलने लगा था।

पत्नी सबकुछ सहन कर सकती है, लेकिन पति और पति का धन-संपत्ति किसी को भी बांट नहीं सकती।

''ये छोकड़ी। उतार सभी गहने। नहीं तो मैं उतार लूंगी और लंगटा करके कमरे से बाहर धकेल दूँगी।''

वह उग्र मुद्रा में उसकी ओर बढ़ी, लेकिन सुदर्शन बीच में आकर खड़ा हो गया।

''आगे मत बढ़ो। रेखा से कुछ भी कहने-सुनने की तुम्हें जरूरत नहीं। जो कुछ हुआ और जो भी हो रहा है इसमें इसका कोई दोष नहीं। जो भी कहना है, मुझसे कहो। वैसे, इसमें मेरा भी दोष नहीं।''

''आप बिल्कुल सठिया गये हैं। बुढ़ापे में छोकड़ीबाजी पोती से भी कम उम्र की लड़की के साथ। छी...छी। मान सम्मान का तनिक भी ख्याल नहीं रहा? कहाँ गया आपके महान आदर्श! सादा जीवन और उच्च विचार! काम की आँधी में ढह गई एक बुलंद इमारत! ऐसा क्यों कर रहे हैं?''

''तुम पाँच वर्षों से बीमार हो। इसलिए मैं स्त्री-सुख से पाँच सालों से वंचित रहा। शरीर की भी कुछ स्वभाविक मांग होती है, जिसे अधिक काल तक रोका नहीं जा सकता। मैं कोई साधु-संत या सन्यासी तो था नहीं। समझ रही हो न। मेरे कहने का अभिप्राय। सत्य कह रहा हूँ न!''

सही कह रहा था वह। लेकिन इसमें उसका क्या दोष! वह जानबूझकर तो बीमार हुई नहीं। अगर वह बीमार होता और वह भी उसकी तरह क्षुद्रपनी करती, तो वह क्या बर्दाश्त कर लेता? पूछा था उसने।

''सिर्फ तन-सुख की ही बात नहीं थी। खुशी भी खत्म हो गई थी। शांति भी रूठ गई थी। घर में कोई भी मुझसे हँसता-बोलता नहीं था। पुत्र-पुत्रवधू और पोता-पोती मुँह फुलाये रहते थे।''

''आपके ही चलते। बात-बात पर कुबोल बोलते रहते थे। सारी गलती आपकी है।''

''असत्य मत बोलो! याद है तुम्हें दस साल पहले की वो घटना। जब मेरा बेटा पैसे के लिए मुझसे लड़ पड़ा था। उस वक्त भी तुमने उसी का पक्ष लिया था। तभी से वह मुझसे बात नहीं करता। अपने बीबी बच्चों को भी बात करने से उसने मना कर दिया है। बतलाओ इसमें मेरा क्या कसूर! जूआ खेलने और शराब पीने के लिए मैंने उसे पैसे नहीं दिये थे। इतना ही न। लेकिन तुमलोगों के पालना से कभी मुँह मोड़ा मैंने।''

''नहीं।''

''तो मुझे गलत क्यों ठहराती हो?''

''तो क्या करती मैं! खून होने देती? कोई चुप होने का नाम लेता था क्या?''

''तुमलोगों के रूखे व्यवहार से मेरा मन भारी-भारी रहने लगा था। हँसने-बोलने वाला एक भी सच्चा हमदर्द नहीं था। मेरी फिक्र किसी को भी नहीं रहती थी। जिन्दगी बोझ बन गई थी। सुख-शांति और आनंद के लिए जी छटपटाते रहता था। तभी मेरे नीरस जीवन में बसंत बनकर आई रेखा।''

पति की बातें सुनकर सुलेखा का दिल जल उठा।

उसने रेखा को फोड़ने के उद्देश्य से कहा - ''इनकी उम्र और अपनी उम्र देख। तेरे नाना-दादा की उम्र के हैं ये। लोग हँसी उड़ायेंगे। कहेंगे, पैसे के लिए बुढ़वा को फंसाया।''

''इसकी फिक्र मुझे नहीं। वो क्या कहते हैं...हाथी चले बाजार कुत्ता भौंके हजार।''

''तुम अभी बिल्कुल नादान और ना समझ हो। इसलिए कह रही हूँ। बूढ़े का क्या? कभी भी टपक सकता है। इसके बाद तुम्हारा क्या होगा? अकेले कैसे कटेगी शेष जिन्दगी! औरत को चाहिए एक मजबूत जीवन साथी। अधूरा और पिलपिला साथी नहीं। इसलिए इन्हें छोड़ दो और किसी योग्य लड़के से शादी कर लो। खुशी से गोद भर जाएगी। इनसे तुम्हें क्या मिलेगा?'' ''इनसे मैं बहुत खुश हूँ।...और जहाँ तक जिन्दगी भर साथ निभाने का प्रश्न है। इसका उत्तर किसी के पास नहीं। जवान लोग भी बूढ़े से पहले मर सकते हैं। इसलिए आप मुझे उल्टा-सीधा मत समझाइये। मैं इन्हें नहीं छोड़ूँगीं। यदि कभी ये मुझे छोड़ देंगे, तो मैं अपनी जिन्दगी को अलविदा कर दूँगी।

रेखा की टेक सुनकर सुदर्शन हर्षित हो गया। ''छोड़ने का प्रश्न ही नहीं। सुख-शांति का त्याग कोई करता है क्या?''

पति की बातें सुनते ही सुलेखा का चेहरा बुझ गया। वह रोते-रोते भारी कदमों से कमरे से बाहर निकल गई।

एक कर्म-फल के सिवाय कोई ऐसी चीज है ही नहीं, जो सदा हमारे साथ रहे और हम उसके साथ रहें। संसार की वस्तुएँ तो केवल आने-जाने वाली है।

संभाव्य

अजन्मी आवाज

शबीना तौकीर
बंगलोर

मुझे आज भी याद है...
तुम्हारे कोख की वो नर्म बिस्तर
तुमसे होकर पहुँचने वाली सूरज की किरणें
बाबा की उन उँगलियों का स्पर्श...
तुम्हारे खाए अचार की खटास
तुम्हारी खाई मिट्टी का सौंधापन
तुम्हारी अधबुनी कहानियाँ....
मुझे आज भी याद है।

बाबा की उँगलियाँ मानो मेरी मुट्ठी में होती थीं
मेरे ज़ेहन में बजती रहती थी तुम्हारी आवाज़
साथ-साथ चलती थी हमारी सांसें
मैं बहुत खुश थी....

मुझे अपने हिस्से की दुनिया देखनी थी
अपने हिस्से की सांस लेनी थी।
बाबा की उँगलियों को छूना चाहती थी
तुम्हारी अधबुनी कहानियाँ को पूरा सुनना चाहती थी
पर अचानक....

पर अचानक उस दिन क्या हुआ?
बिजली सी एक तेज़ चमक,
मैंने बंद आँखों से भी देख ली थी
क्या वह बहुत बड़ा ऑपरेशन था?
चीख भी सुनी थी बाबा की।
फिर कोई बुरा सपना देखा था शायद...?

हर तरफ दुधिया रोशनी
मेरी आखें चौंधिया गई थी
मैंने कस कर अपनी आँखें बंद कर ली थी अम्मा
मुझे लगा तुम चल नहीं रही थी
घिसट रही थी
दर्द हुआ मुझे
मैंने तुम्हारी कराह सुनी थी
अपने भीतर तक समाते महसूस किया था
एक काँटा।
मैं खुद को बचाना चाह रही थी।
छुप रही थी उस कांटे से
पर उसने शायद मुझे देख लिया था अम्मा....

फिर सब कुछ गड-मड सा हो गया था
शोर, आग, धुआं, धक्का-मुक्की और खून।
मुझे लगा लोग बहुत खुश थे
बाबा की चीखों, या तुम्हारी कराहों ?
या मेरी निःशब्द सिसकियों पर?
वो लोग कौन थे माँ?

डॉक्टर थे?
कैसा ऑपरेशन था ये ?
मैंने बाबा को सुना था डॉक्टर से कुछ बातें करते हुए,
तुम ठीक तो हो न अम्मा?
तुमने मेरे जन्म पर सोहर क्यूँ नहीं गाया?
और मुझे अँधेरी गुफा में क्यू लाकर फेंक दिया
गया?
तुम बाबा के साथ आओगी यहाँ?

मुझे ले जाने?
मैंने अपने हिस्से की दुनिया अब तक नहीं देखी
मैं कब जन्मूँगी अम्मा....

क्षणिकाकार
डॉ. मिथिलेश दीक्षित का व्यापक भावबोध

प्रो. (डॉ.) शरद नारायण खरे

क्षणिका का सामान्य रूप में अर्थ होता है - छोटी कविता या यूँ कहें कि वह छोटी कविता, जो क्षणभर का आकार-प्रकार छोटा (लघु) होता है, परन्तु लघु होने के उपरान्त भी क्षणिका का आशय व सन्देश अत्यन्त विस्तृत होता है।

वस्तुतः क्षणिका अपने-आप में सम्पूर्ण कविता होती है, जिसमें एक दर्शन, एक सारांश, एक समग्र कथ्य व एक पूर्ण विषयवस्तु समाहित है। क्षणिका सकारात्मक रूप में भी प्रस्तुत हो सकती है और व्यंग्यात्मक रूप में भी। क्षणिकाएँ विसंगतियों व विरूपताओं पर प्रहार करती हैं, तो वे विडम्बनाओं का चित्रण भी करती हैं। उनमें व्यंग्य के साथ ही शालीन हास्य भी हो सकता है।

क्षणिकाओं में यह क्षमता विद्यमान होती है कि वे प्रतिकूलताओं पर आघात कर सकती हैं और विसंगतियों पर चुटकी ले सकती हैं, 'पिन प्वाइंट' कर सकती है। वस्तुतः क्षणिकाओं का आकार लघु अवश्य होता है, परन्तु कहीं से भी उनका वजन, प्रभाव कम नहीं होता है और यदि कहीं किसी सधे व परिपक्व रचनाकार ने क्षणिकाओं का सृजन किया है, तब तो क्षणिकाओं की तीक्ष्णता और गहनता और अधिक तीव्र एवं सम्प्रषणीय हो जाती है। क्षणिकाएँ नवचेतना का संचार करती है, जीवन्तता का प्रसारण करती हैं तथा भावबोध की एक अजस्र धरा को प्रवाहित करती हैं।

इस कसौटी पर हिन्दी-जगत् की वरिष्ठ क्षणिकाकार और मूर्द्धन्य साहित्यकार डॉ. मिथिलेश दीक्षित की क्षणिकाएँ शत-प्रतिशत खरी उतरती हैं। डॉ. मिथिलेश दीक्षित के पाँच क्षणिका-संकलन तथा छठा उनके द्वारा सम्पादित संकलन प्रकाशित होकर साहित्य की गरिमा में वृद्धि कर चुके हैं और अच्छी-खासी लोकप्रियता भी अर्जित कर चुके हैं। उनके द्वारा रचित क्षणिकाएँ अनेक स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर लोकप्रियता के उच्च शिखरों का स्पर्श कर चुकी हैं और आकाशवाणी द्वारा प्रसारित होकर विशिष्ट, उत्कृष्ट व बहुचर्चित हो चुकी हैं।

डॉ. मिथिलेश दीक्षित क्षणिका-सृजन में पूर्ण पारंगत व सिद्धहस्त हैं। उनका सामाजिक पर्यवेक्षण न केवल व्यापक है, बल्कि अत्यन्त सूक्ष्म, पैना तथा गहरा भी है। यही कारण है, कि उनका क्षणिका-लेखन का कैनवास बहुत विस्तुत है। उनका क्षणिका-संकलन 'उगते सूरज का एहसास', जिसमें सन् 1980 से 1994 तक की क्षणिकाएँ संकलित हैं, बौद्धिक चिन्तन और गहन भावबोध की पराकाष्ठा तक पहुँचा है। उसमें विद्यमान सकारात्मक दृष्टि जीवन व जगत् को समझने का नवीन बोध प्रदान करती है। इन क्षणिकाओं में चेतना की नूतनता है और मौलिकता है। उन्होंने लिखा भी है -

''दिल की गहराई की / थाह नाप आये हम,
तब कहीं / ये कीमती मोती / निकाल पाये हम।''

क्षणिका-संग्रह 'धूप की तरह' की क्षणिकाएँ शाश्वत सत्य की सुन्दर झलकियाँ हैं। यथार्थ संकेतों, लक्ष्य-निष्ठा, भावशबलता को प्रस्तुत करती ये क्षणिकाएँ अत्यन्त गहन धरातल से जुड़ी हुई श्रेष्ठ रचनाएँ हैं, जिनमें शिल्पात्मक कौशल की प्रवीणता और परिपक्वता दृष्टिगोचर होती है -

''चिढ़ा रहा ईमान मुझे
घर का दरवाजा सुनाकर,
रहे-बचे रिश्तों को तोड़ा
सच्चाई की संगत ने!''

जीवन को जीने की कला सिखाती निम्नलिखित क्षणिका मात्र क्षणिका नहीं है, बल्कि एक पूरा खण्डकाव्य है, जिसमें अनगिनत मोती भरे हुए हैं -

''दर्द यह
टकसाल में ढलता नहीं है,
या कि मेलों में कहीं
मिलता नहीं है,
यह धरोहर है बड़े सौभाग्य की,
यह सभी के हृदय में
खिलता नहीं है।''

कोमल भावनाओं की सरस अभिव्यक्ति देखें -

''सिन्धु का संसार पाकर,
प्यार पारावार पाकर,
हर लहर चंचल हुई है,
अधिक लाड़-दुलार पाकर।''

क्षणिका-संग्रह 'सिन्धु-सीपी में' की क्षणिकाएँ चिन्तन के उच्च धरातल की सहज-सुन्दर रचनाएँ हैं। उनमें संवेदनाओं का तीव्र ओर गहन आवेग है। प्रत्येक क्षणिका में गहन स्पन्दन है, प्रखरता है और प्रभाव-सृष्टि की पूर्ण क्षमता है, इसीलिए इन क्षणिकाओं का स्वरूप और इनका प्रयोजन अद्‌भुत है।

निस्सन्देह, इस संग्रह की क्षणिकाओं में उच्च भावबोध के साथ ही शिल्प की विशिष्टता है तथा सृजन की उत्कृष्टता है। इस संग्रह की क्षणिकाएँ लयात्मकता, लाक्षणिकता, बिम्बात्मकता तथा सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से असाध

ारण व अद्वितीय हैं। एक उदाहरण देखें -

"सघन इतनी हो गयीं / अनुभूतियाँ अब,

व्यक्त करने में / नहीं सक्षम / मेरी वाणी।"

साहित्य में प्रेम और करूणा की सरिता प्रवाहित होती है, यह क्षणिका इसी तथ्य को प्रकट करती है -

"प्रेम से निर्माण होता / द्रोह से कैसे,

उपजता काव्य करूणा से / किसी विद्रोह से कैसे।"

क्षणिका-संग्रह 'एक स्वर और भी' की क्षणिकाएँ सांस्कृतिक श्रेष्ठता, माधुर्य, कोमल अनुभूतियों व मानवीय आदर्शो की सरसध्वनि गुंजरित करती हैं। इन क्षणिकाओं में जीवन के सुर, लय, ताल, छन्द सभी विद्यमान हैं। शिल्प की दृष्टि से भी ये उत्कृष्ट और विशिष्ट हैं। ये क्षणिकाएँ जीवन्तता का सुखद एहसास कराती हैं। कभी-कभी जीवन की विडम्बनाओं का चित्रण हमें उद्वेलित भी करता है। 'धरती माता' और 'भारत माता' की वन्दना करने वालों में कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो सम्पत्ति समेटने में ही जीवन व्यतीत कर देते हैं।

'जले सुधि के दीप' क्षणिका-संकलन का कुशल सम्पादन भी डॉ. दीक्षित ने किया है, जिसमें कुछ चर्चित क्षणिकाकारों की क्षणिकाएँ संकलित की गयी हैं। क्षणिका साहित्य के इतिहास में इस संकलन का भी विशेष महत्व है। इसमें डॉ. दीक्षित की भी कुछ सारगर्भित क्षणिकाएँ संकलित हैं। दृष्टव्य हैं दो क्षणिकाएँ -

"मेरा रोप हुआ

पौधा है / मुझे न सही,

कल, औरों को छाँह देगा।

सुप्त संवेदनाओं को झकझोरती उनकी यह क्षणिका हमें भीतर तक हिला देती है -

"सीताएँ भटकती दर-दर

जलती चिताओं में,

रामजी सोये है,

मंदिर की गुफाओं में।"

संक्षेप में, कह सकते हैं कि अनेक विधाओं की सशक्त रचनाकार डॉ. मिथिलेश दीक्षित का नाम क्षणिका-संसार में भी अत्यन्त सम्मान के साथ लिया जाता है। वे क्षणिका-सृजन के क्षेत्र में ऐसी मापदण्ड है, जिनकी कोई तुलना नहीं। वे जिस सूक्ष्मता, गहनता व उच्चता के साथ क्षणिकाओं का सृजन करती हैं, वह अभिनन्दनीय है। यह सत्य है कि डॉ. मिथिलेश दीक्षित की क्षणिकाओं में जिस प्रकार यथार्थता, मूल्यपरकता, सांस्कृतिकता, आध्यात्मिकता, चिन्तनशीलता, समसामयिकता व विडम्बनाओं का चित्रण विद्यमान है, वह अत्यन्त उत्कृष्ट व असाधारण है।

यह भी यथार्थ है कि डॉ. मिथिलेश दीक्षित एक सधी व मँझी हुई क्षणिकाकार हैं। उनकी क्षणिकाओं में जो सुवास है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। डॉ. मिथिलेश की हर क्षणिका एक ऐसी सम्पूर्ण कविता प्रतीत होती है, जिसमें रूप, रंग, रस, गन्ध सब कुछ विद्यमान है। वस्तुतः, क्षणिका-सृजन का कार्य कोई सरल-सुगम कार्य नहीं है। एक समग्र साधना से गुजरने के बाद ही सार्थक क्षणिका का निर्माण हो पता है। क्षणिका का सृजन सबसे जटिल होता है, क्योंकि संक्षेप में, सीमित शब्दों में ही बहुत कुछ कह देने की कला जिनकी आती है, वे ही यह कार्य भलीभाँति सम्पन्न कर पाते हैं। इस दृष्टि से डॉ. मिथिलेश दीक्षित अत्यन्त खरे सिद्ध हुए हैं। उन्होंने एक से बढ़कर एक क्षणिकाओं व क्षणिका-कृतियों का सृजन किया है। क्षणिका-संकलन के सम्पादन का कार्य भी उन्होंनें अत्यन्त कौशल के साथ सम्पन्न किया है। देश की अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में उनकी क्षणिकाओं का सतत् प्रकाशन होता रहता है तथा उनकी सराहना होती है। इसमें कोई दो मत नहीं, कि डॉ. मिथिलेश दीक्षित क्षणिका-साहित्य की गौरव हैं और उन्होंने क्षणिका-सृजन को अनोखी आन-बान-शान प्रदान की है। इस निमित्त मैं उनका सारस्वत अभिनन्दन करते हुए, उन्हें बधाई देता हूँ।

धर्म के तीन स्कन्ध हैं - यज्ञ, स्वाध्याय और दान। इनमें स्वाध्याय सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि इसी से हम वस्तुतः मनुष्य कहलाने के अधिकारी बनते हैं।

स्वाधीन स्त्री के शब्द

कृपा शंकर चौबे

भारत ने वीसा देकर तसलीमा को अपने भाषा-भाषियों से मिलनु-जुलने का अवसर दिया है। इसके पहले वे महीने भर के लिए यहाँ आई थीं। इन यात्रओं से वे अपनी जड़ों का सुख अनुभव करती हैं। बांग्लादेश लौटना तसलीमा के लिए अब भी सपना है। तसलीमा चाहतीं तो ढ़ाका मेडिकल कॉलेज अस्पताल में नौकरी करती रह सकती थीं, पर बांग्लादेश में यौन विषमता का उन्होंने लिखकर विरोध किया। वे लगातार अधिकारों से वंचित महिलाओं के पक्ष में कलम चलाती रहीं। इसपर मुल्लाओं ने कहा कि तसलीमा बांग्लादेश की महिलाओं को भ्रष्ट कर रही हैं। यह वह समय था, जब तसलीमा की किताबों की धूम मची थी (1989.92) कट्टरपंथियों ने तसलीमा विरोधी वातावरण बनाना शुरू किया। 1992 के ढ़ाका पुस्तक मेले में उनकी किताबें जलाई गई। उन पर पथराव हुआ। उनकी साड़ी फाड़ दी गई। किसी तरह पुलिस उन्हें बचाकर मेले से बाहर ले गई। पुस्तक मेले की आयोजक बांग्ला अकादमी ने उन्हें चेताया कि दोबारा वे पुस्तक मेले में न आएँ।

कट्टरपन्थियों का लगातार विरोध भड़कता देख तसलीमा से कहा गया कि वे अस्पताल की नौकरी या लेखन में एक का चयन कर लें। उन्होंने लेखन का चुनाव किया। तसलीमा को कलकत्ता कविता उत्सव में आना था पर ढ़ाका हवाई अड्डे से ही उन्हें वापस भेज दिया गया। पासपोर्ट जब्त कर लिया गया जिसे लेने में उन्हें डेढ़ साल लग गए। उसी समय 1992 में 'निर्वाचित कॉलम' पुस्तक पर तस्लीमा को आनन्द पुरस्कार मिला। यह पुरस्कार पाने वाली वे बांग्लादेश की पहली साहित्यकार थीं। बाबरी मस्जिद ढ़हने की घटना के बाद आई उनकी पुस्तक 'लज्जा' ने तसलीमा विरोधी वातावरण को और बढ़ा दिया। कट्टरपंथियों ने उनकी हत्या का फतवा जारी किया। उनके सिर पर पहले पचास हजार, फिर एक लाख टका का इनाम घोषित किया गया। कट्टरपंथियों के दबाव में आकर सरकार ने उनपर केस किया और गिरतारी के लिए गैरजमानती वारंट जारी किया। दो महीने जान हथेली पर लेकर यहाँ-वहाँ छिपकर तसलीमा ने गुजारे। वे कहीं भाग न जाएँ इसलिए हवाई अड्डे, सड़क मार्ग, सभी सील कर दी गई। उनके पिता के चेम्बर पर हमला हुआ। बहन की नौकरी चली गई। अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय ने बांग्लादेश पर दबाव बनाया तब जाकर सरकार ने तसलीमा को सुरक्षित स्वीडन जाने दिया। तब से यूरोप ही तसलीमा का घर है। अधिकारिक आवास अब भी स्वीडन है। वैसे फिलहाल वे पेरिस में रह रही हैं। बीच में कट्टरपंथियों ने सड़कों पर इस कदर प्रदर्शन किया कि फिर उन्हें देश छोड़ना पड़ा।

देश से निर्वासित होने के बाद तसलीमा ने भारत से वीसा माँगा जो काफी जद्दोजहद के बाद उन्हें मिला। तब से वे कई बार कलकत्ता आईं। यहाँ आने पर उन्हें न सिर्फ नयी ऊर्जा मिलती है बल्कि अपने साहित्यिक मित्रें के साथ अपनी भाषा में गप करने का आनन्द भी मिलता है। कलकत्ता में तसलीमा के पाठकों-प्रशंसकों की सूची बहुत लम्बी है। प्रशंसकों से मिलकर उन्हें नयी ताकत मिलती है। बांग्लादेश में लोकतन्त्र होने के बावजूद वहाँ 'आमार मेयेबेला' के प्रकाशन पर रोक है। बांग्लादेश का आरोप है कि इस पुस्तक में धर्म पर आघात किया गया है और यह अश्लील भी है।

'आमार मेयेबेला' के बाद तसलीमा अपनी जीवनी का दूसरा खण्ड लिख रही हैं। उनकी इस आत्मकथा में सोलह से बत्तीस वर्ष का जीवन होगा। बकौल तसलीमा, 'इसमें कुछ भी नहीं छिपाऊँगी। 'आमार मेयेबेला' में जो देखा-समझा वही लिखा। आगामी खण्डों में भी वैसा ही होगा। अधिकतर लोग सत्य छुपाने के लिए जीवनी लिखते हैं, मैं वह नहीं करती।' तसलीमा वह नहीं करतीं, यही उनका साहस है। यही ताकत है और इसी कारण उनकी ज्यादातर पुस्तकें बेस्ट सेलर रही हैं। बांग्ला में तसलीमा की अधिकतर पाठक महिलाएँ हैं। शायद इसकी वजह यह है कि स्त्री होने की पीड़ा और यन्त्रणा को तसलीमा ने साहसपूर्वक वाणी दी है। बंगाल में तो नारी स्वतन्त्र्य की वे प्रतीक बन गई हैं।

सुभाषचंद्र बोस के सपनों का भारत

डॉ. रंजन कुमार घोष
भागलपुर

महान व्यक्तित्व अपने देश-काल की कसौटी पर उत्तीर्ण होकर इतना मानक हो जाता है कि आगत हर युग उससे सत्प्रेरणा का दिशा-बोध प्राप्त कर उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना धर्म और कर्म मानता है। स्वनामधन्य सुभाषचंद्र बोस के विलक्षण व्यक्तित्व की अपूर्व महानता का ऐतिहासिक संदर्भ कुछ ऐसा ही स्वर्णिम है।

एक सचेतन देश-काल की प्रसव-पीड़ा से उत्पन्न इस अपूर्व गत्यात्मक और सृजनात्मक व्यक्तित्व ने अपने युग के समग्र उद्वेलन, अन्तः संघर्ष और वेदना को आत्मसात करने हुए पराधीन राष्ट्र को एक नया, ताजा और स्वायत जीवन प्रदान करने का हर संभव-असंभव प्रयत्न किया और भावी पीढ़ियों के लिए एक ऐसा मौलिक जीवन-प्रारूप प्रस्तुत किया, जिसमें मनुष्य को उसकी अरिस्मता और गरिमा के साथ एक संपूर्ण स्वतंत्र जीवन जीने का पूर्ण अवसर प्राप्त हो। स्पष्टतः कर्मयोगी सुभाषचंद्र की संवेदनशील दृष्टि में एक स्वतंत्र, समतामूलक, शोषणरहित, आत्म-निर्भर और सम्पन्न-समृद्धध भारत का स्वप्न बसा हुआ था, जो उनके समग्र चिंतन, वचन और आचरण में निरन्तर प्रतिविम्बित होता रहा। सुभाषचंद्र ने इसी स्वर्णिम स्वप्न के लिए समस्त भौतिक सुख सुविधाओं, लौकिक पद-प्रतिष्ठाओं का सर्वया परित्याग कर परतंत्र भारत में एक ऐसे स्वतंत्र सैनिक जीवन का वरण किया जिसका लक्ष्य था हर निभिष, हर पल अपनी पराधीन मातृभूमि की मुक्ति और राष्ट्रीयजनों की बेहतरी।

भारतीय पुनर्जागरण ने 19वीं - 20वीं शताब्दी को अनेक स्वनामधन्य युग पुरूष प्रदान किया और निस्संदेह भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में ऐसे प्रत्येक व्यक्तित्व का अपना प्रदेय है और यह भी कि भारतीय स्वाधीनता ऐसे तमाम व्यक्तित्वों से प्रेरित, जागृत समग्र राष्ट्र का समेकित प्रतिफलन है तथापि सुभाषचंद्र बोस के क्रांतिकारी, यथार्थवादी और अपेक्षाकृत वैज्ञानिक या वस्तुवादी व्यक्तित्व की व्यावर्तक पहचान है। आजाद और समग्रतः प्रगतिशील भारत का उनकी स्वप्ना इसी स्वप्न को साकार करने के लिए वे हर स्तर पर हर विरोध से निरन्तर लड़ते रहे और अन्ततः राष्ट्र की युवा पीढ़ी की क्रांतिधर्मी धड़कन के रूप में अमर हो गये।

सुभाषचंद्र बोस राष्ट्र की युवा पीढ़ी के प्रति आग्रही और आस्थावान थे। उनकी चेतना स्वामी विवेकानंद के इन प्रेरक शब्दों से अनुप्राणित थी कि ''कौन है जो युग-युग से उठती हुई भारत माता की पुकार सुनेगा? किशोर भारत! हिमालय की शिलाएँ तुम्हें साधना की शिक्षा देने के लिए बुला रहीं हैं। उधर ही जाओ।'' फलस्वरूप आई.सी.एस. युवा सुभाष ने साम्राज्यवादी, शोषक ब्रिटिश सत्ता की आलीशान नौकरी को लात मारकर देश सेवा का वत लिया और भारतीय युवा पीढ़ी के नाम यह अमर तथा प्रेरक स्वाधीनता-मंत्र प्रसारित किया कि -

''तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा।''

इस युवा क्रांतिकारी ने सगर्व यह घोषणा की कि -

''.....ईश्वर के नाम पर भारतवर्ष एवं मेरे अड़तीस करोड़ देशवासियों की मुक्ति के लिए, मैं सुभाषचंद्र बोस यह पवित्र शपथ लेता हूँ कि अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक मैं इस लड़ाई को जारी रखूँगा।''

सशस्त्र क्रांति के अग्रदूत, त्याग, वलिदान और कर्म के ज्वलन्त प्रतीक सुभाषचंद्र बोस को यह परम विश्वास था कि जब जागृत राष्ट्र की युवा पीढ़ी ने सिर पर कफन बाँधकर सुद्ध का शंखनाद कर दिया है तो भारत की आजादी रोके न रूकेगी -

''दोस्तों! मैं एक बार फिर अपने विश्वास को दोहरा देना चाहता हूँ कि देश हर कीमत पर आजाद होगा, हमारा त्याग और बलिदान व्यर्थ नहीं जाएगा। हम अपने कठिन इम्तहान में जरूर पास होंगे।''

देश की युवा पीढ़ी के प्रति परम आस्थावान सुभाष ने हर अवसर पर यह ऐलान किया कि ''...... उन्होंने (नवयुवकों ने) तो हिन्दुस्तान को आजाद कराने का बीड़ा उठा लिया है।''

सुभाषचंद्र के सपनों का भारत एक ऐसा स्वतंत्र भारत था जिसमें स्पष्टतः देश का नेतृत्व अपेक्षाकृत युवा हाथों में हो क्योंकि बुजुर्गो के प्रति पूर्ण श्रद्धा, आदर और प्रेम रखते हुए भी सुभाष की आस्था युवाओं पर टिकी थी। उन्होंने राष्ट्रीय युवा पीढ़ी के नाम यह अमर संदेश प्रसारित किया कि -

''नवयुवकों का यह आदर्श होना चाहिए कि मानव समाज तथा अपने लिए एक नये संसार का निर्माण करें।''

स्पष्टतः सुभाष के सपनों का भारत एक सम्पूर्ण स्वाधीन भारत था और उनका दृढ़ मत था कि यह सम्पूर्ण स्वाधीनता ब्रिटिश सरकार कभी भी स्वेच्छया भारत को नहीं देगी - इसे बलात् उसके हाथों से छीनना होगा -

''मेरे देश के नेताओं का रवैया इस मामले में मुझसे बिल्कुल भिन्न है। वे अहिंसा-अहिंसा चिल्लाते हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि क्या ब्रिटिस सरकार उनकी माँगों को पूरा करेगी? क्या वह भारत को सम्पूर्ण स्वाधीन करेगी?

भारत के पराभव और उसकी दीन अवस्था के कारणों की पड़ताल करते हुए सुभाष ने भावुकतापूर्ण आदर्श और वस्तुगत दृष्टिहीनता को रेखांकित किया -

''वह क्या चीज है जिसके कारण भारत का भौतिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों में पतन हुआ है? उसका भाग्य तथा अति प्राकृतिक शक्तियों में विश्वारा, आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के संबंध में उसकी उदासीनता, आधुनिक

सुद्‌ध-विज्ञान में उसका पिछड़ापन, उसके परवर्ती दर्शन से उत्पन्न शांतिमय संतोष की भावना तथा अहिंसा का पालन, जो हास्यास्पद सीमा तक पहुँच गया है। ये सब भारत के पराभव के कारण हैं।''

स्पष्ट है कि सुभाष के सपनों का भारत भाग्यवादी नहीं, कर्मवादी है, आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों से मंडित है, आधुनिक युद्‌ध-विज्ञान में निपुण है और अपने ऊपर जुल्म ढाहनेवालों के दाँत खट्‌टे कर देने वाला निर्भीक और निरन्तर प्रगतिधर्मी है।

सच है कि महान व्यक्तित्व वर्तमान का स्त्रहटा होने के साथ ही भविष्य का द्रष्टा भी होता है। सुभाषचंद्र बोस ने अपने समय को तो अपने शक्तिशाली हाथों से अपनी आस्था और दृष्टि के अनुरूप रचा ही -
उन्होंने पूर्ण स्वाधीन भारत का एक आदर्श प्रारूप भी पेश किया। इस प्रारूप से स्पष्ट होता है कि ब्रिटिस सत्ता से भारत की मुक्ति उनके स्पण्न का प्रथम चरण भर था। स्वाधीन भारत के निर्माण की उनकी परिकल्पना बहुमुखी और यथार्थवादी विचारधाराओं पर टिकी हुई थी। टोक्यों विश्वविद्यालय में भाषण देते हुए सुभाष ने भावी स्वतंत्र भारत के संरचनात्मक और स्वभावगत स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि -
''स्वाधीनता प्राप्त करते ही भारतवर्ष में लड़ाई शुरू होगी - दरिद्रता और अशिक्षा के विरूद्‌ध! यह अकेले एक आदमी का काम नहीं। इसका जिम्मा संपूर्ण राष्ट्र को लेना होगा। इसीलिए द्रुतगति से मौलिक संस्कार कर सकने की क्षमता रखने वाला समाजतंत्र, एक ऐसी शक्तिशाली सरकार चाहिए जो केवल एक वर्ग या समूह के स्वार्थ के लिए काम नहीं करेगी, काम करेगी जन साधारण की सेवा करने के लिए।''

स्पष्टतः सुभाष की संवेदनशील मानवीयता की कसौटी पर नहीं स्वाधीन भारत उत्तीर्ण हो सकता है जो दरिद्रता, अशिक्षा, पक्षधरता, गुटवादिता, स्वार्थपरता, रूग्णता आदि मानव-विकास की प्रतिरोधक कुप्रवृत्तियों और विकृतियों से पूर्ण मुक्त हो तथा जो जन-जन के सम्यक् विकास के प्रति प्रतिवद्‌ध और प्रतिश्रुत हो। सुभाष की परिकल्पना और चिन्तना के अनुसार ऐसा भारत स्वतंत्र और समाजवादी भारत ही हो सकता है -
''मुझे तनिक भी संदेह नहीं कि हमारी दरिद्रता, निरक्षरता और बीमारी के उन्मूलन तथा वैज्ञानिक उत्पादन और विवरण से संबंधित समस्याओं का प्रभावकारी समाधान समाजवादी मार्ग पर ही चलकर प्राप्त किया जा सकता है।''

9 फरवरी, 1938 ई. को राष्ट्रीय कांग्रेस के 57वें अधिवेशन में अध्यक्ष पद से बोलते हुए सुभाष ने जो विचार प्रस्तुत किये उससे भी उनके सपनों के भावी स्वतंत्र भारत के समाजवादी स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है -
''मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि गरीबी के निवारण अशिक्षा, बीमारियों के मूलोच्छेदन के लिए वैज्ञानिक विधि से उत्पादन तथा वितरण के लिए हमारी भावी सरकार को सर्वप्रथम योजना आयोग का गठन करना होगा। यह आयोग निर्माणकारी कार्यो की सर्वप्रथम योजना तैयार करे। योजना आयोग की सिफारिशों के अनुसार राज्य हमारी सारी उत्पादन, उद्योग, भूमि और कृषि व्यवस्था के समाजीकरण के लिए व्यापक आयोजन करे।

सुभाष चंद्र बोस के सपनों का भारत स्पष्टतः विक्टोरिया युगीन इंग्लैंड में प्रचलित लोकतंत्र के आधार पर खड़ा नहीं था और न हीं वह भारत महात्मा गाँधी के ट्रस्टीशिप के आर्थिक स्वरूप पर आस्था रखता था। इसके विपरीत सुभाष के सपनों के भारत में राष्ट्रीय राजनीतिक अर्थ व्यवस्था और शासन-प्रणाली की एक समाजवादी व्यवस्था का प्रावधन था। सुभाषचंद्र बोस पश्चिमी अर्थतंत्र के प्रति बिल्कुल आस्थावान नहीं थे और इस मामले में वे अपेक्षाकृत मार्क्सवादी अर्थ व्यवस्था के पक्षधर थे -
''हमारी आर्थिक समस्याओं का हल करने के लिए पिंजन और मार्शल जैसे पश्चिमी अर्थ शास्त्री ज्यादा सहायक सिद्‌ध नहीं होंगे।''

अपने समाजवादी चिन्तना और परिकल्पना के कारण अन्ततः सुभाष की राष्ट्रीय काँग्रेस छोड़कर 'फारवर्ड ब्लॉक' नामक एक नयी पार्टी की स्थापना करनी पड़ी जिसके सम्बन्ध में उन्होंने अपना दृष्टिकोण इन शब्दों में प्रकट किया -
''फारवर्ड ब्लॉक एक सच्ची समाजवादी पार्टी है और गांधीवाद पूंजीपतियों का एक सिद्‌धांत है तथा प्रतिक्रियावादी है क्योंकि वह वर्ग संघर्ष के खिलाफ है और ट्रस्टीशीप के सिद्‌धांत की वकालत करता है। अन्त में इसका ब्रिटिस साम्राज्यवाद से समझौता हो जायेगा।''

अपने राजनैतिक जीवन के प्रारंभ से लेकर अंत तक नौजवान भारत सभा के अध्यक्ष, अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अध्यक्ष, अखिल भारतीय फारवर्ड ब्लॉक के अध्यक्ष और अस्थाई आजाद हिन्द फौज सरकार के प्रमुख की हैसियत से सुभाषचंद्र ने ब्रिटिस साम्राज्यवाद के खिलाफ समझौता विरोधी संघर्ष करते हुए बराबर भारतीय समस्याओं के हल के लिए समाजवाद की वकालत की।

स्पष्टतः सुभाष के सपनों के भारत में शासन जनता अर्थात् किसानों और मजदूरों का समर्थक होगा और पूँजीपतियों, साहूकारों आदि के निहित स्वार्थें का विराधी। यह शासन भारतीय जनता की पूर्ण राजनीतिक और आर्थिक मुक्ति के लिए प्रतिबद्‌ध होगा। इस शासन का स्वरूप यद्यपि संघात्मक होगा किंतु आरंभिक रूप में वह अधिनायकवादी शक्तियों से सम्पन्न एक मजबूत केन्द्रीय शासन होगा ताकि भारत आत्म निर्भर हो।

सुभाष के सपनों का समाजवादी भारत राष्ट्र के खेतिहर तथा औद्योगिक जीवन का पुनर्संगठन करने के लिए उसे राजकीय नियोजन की सुदृढ़ तथा समुचित व्यवस्था में विश्वास रखते हुए नयी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण पुराने समय में प्रचलित गाँव-पंच शासन के आधार पर करना चाहेगा और जाति-प्रथा जैसी वर्तमान सामाजिक दीवारों को ध्वस्त करने की हर चेष्टा करेगा। यह भारत संपूर्ण देश में एक सी भूमि व्यवस्था कायम करने का प्रयत्न करते हुए एक मजबूत सैनिक अनुशासन संपन्न शासन-व्यवस्था की प्रतिष्ठा करना चाहेगा ताकि राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्ण रखा जा सके और देश में अराजकता फैलने से रोका जा सके। यह भारत एक ऐसी राष्ट्रीय कार्यपालिका से संपन्न होगा जिसमें भारत के तमाम क्रांतिकारी और उग्रवादी संगठनों को समायोजित किया जा सके।

निश्चय ही सुभाषचंद्र बोस के सपनों का समाजवादी भारत मार्क्सवाद की उपज नहीं बल्कि राष्ट्रीय चिंतन का रचनात्मक अवदान था। स्वयं सुभाष ने कहा है कि -

''भारत वर्ष के समाजतंत्र ने कार्ल मार्क्स की पुस्तक से जन्म ग्रहण नहीं किया। उसका मूल उद्‌गम स्थल है जीव सेवा और दरिद्रों की उन्नति। स्वामी विवेकानंद इसके आधार हैं।''

ध्यातव्य है कि सुभाष के व्यक्तित्व का विकास एक ऐसे परिवेश में हुआ था जहाँ हिन्दू अध्यात्मवाद की जड़ें काफी गहरी थी। विवेकानन्द और अरविन्द के अध्यात्म-चिंतन से सिंचित सुभाष का चैतन्य बोध राष्ट्रवाद का समर्थक और धर्म के प्रति सहिष्णु था। ऐसे में मार्क्स के साम्यवादी आर्थिक सिद्‌धांतों के प्रति उदार होकर भी सुभाष ऐतिहासिक भौतिकवाद के समाजशास्त्र के प्रति उन्मुख नहीं थे। वे भारतीय समाजवाद में रूसी वर्ग-संघर्ष की कहानी दुहराने की आवश्यकता का अनुभव भी नहीं करते थे क्योंकि उनका मत था कि - ''स्वतंत्र भारत में राज्य जनता का साधन होगा।''

सुभाष ने एक ऐसे भारत का स्वप्न देखा था जो राष्ट्रीय एकता के अखंड धागे में गूँथा हुआ हो। जहाँ हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई सभी भाई-भाई हों। आजादी प्राप्त करने और प्राप्त आजादी की सुरक्षा - दोनों प्रयोजनों से राष्ट्रीय एक्ता का होना वे अनिवार्य मानते थे। सुभाष की राष्ट्रीय एकता के प्रमुख-आयाम थे - अखण्ड भारत, भावात्मक एकता, व्यवस्थित प्रचार, उद्देश्यपूर्ण शिक्षा और राष्ट्र विरोधी तत्त्वों का दमन। ध्यातव्य है कि सुभाष द्वारा संस्थापित और संचालित आजाद हिन्द फौज की सबसे बड़ी विशेषता साम्प्रदायिक एकता ही थी। इतिहासकार ताराचंद ने आजाद हिन्द फौज के महत्व पर विस्तारपूर्वक विचार करते हुए लिखा है कि -

''सबसे बड़ी बात इस सेना के संगठन में यह हुई कि इसने साम्प्रदायिक एकता का उदाहरण प्रस्तुत किया।''

इतिहासविद् सुमित सरकार और विपिनचंद्र ने भी ताराचंद के इस मत का खुलकर समर्थन किया है।

सुभाष के सपनों का भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र था। उनका विश्वास था कि धर्म व्यक्ति की आत्मा को बेल प्रदान करता है। अतः प्रत्येक भारतीय को धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार मिलना चाहिए। ऐसा होने से राष्ट्र मजबूत और शाश्वत होगा। वस्तुतः सुभाष की धारणा, सृजनात्मक शक्ति और स्वप्न का असीम संबल था। ईश्वर की असीम भक्ति और उनकी कृपा में आस्था। उनके विचार थे कि - ''मनुष्य ईश्वर के हाथों में एक लघु मूर्त्ति है।'' रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, अरविन्द के आध्यात्मिक संदेशों और भगवद्‌गीता की अमृत वाणी से निर्मित सुभाष का मानस स्वभावतः ही भारत भूमि गहराई से बसे धर्म और भक्ति-भाव के प्रति संवेदनशील और आग्रही था।

सुभाष के सपनों का भारत प्रेम भावना को सर्वोपरि मानते हुए राष्ट्रीय जनता के जीवन का पुनर्सुजन करना चाहता था। मानव-जीवन के सार तत्व के रूप में प्रेम को स्वीकार करते हुए सुभाष ने उसे अनिवार्य रूप से ग्रहणीय माना है -

''मेरी दृष्टि में प्रेम सत्ता का तात्त्विक स्वभाव है। प्रेम विश्व का सार है और मानव जीवन का तात्त्विक गुण है।''

सुभाष एक ऐसे भारत के स्वप्नद्रष्टा थे जो निरन्तर गत्यात्मक और विकासशील हो और जो किसी वाद या सिद्‌धांत की जड़ता से आक्रांत न हो।

सारतः भारतीय स्वतंत्रता के अग्रदूत सुभाष चंद्र बोस का समग्र चिंतन, वचन और कर्म एक ऐसे स्वतंत्र, अखण्ड, आत्म निर्भर तथा शक्तिशाली भारत के निर्माण में एक जुट हो व्यस्त था जो मानवीय अस्मिता और गरिमा को पूरी संवेदनशीलता के साथ स्वीकार करते हुए आगे बढ़ रहा था।

दुःख मनुष्य के विकास का साधन है। सच्चे मनुष्य का जीवन दुःख में ही खिल उठता है। सोना तपाने पर ही चमकता है।
मनुष्यता की कसौटी दुःख है।

1. भीष्म से

भीष्म !
अब तो बोलो
कि तुम्हारे साथ अब
कोई निष्ठा नहीं
हस्तिनापुर सिंहासन रक्षा की

तुम्हारी चुप्पी ने
किया था महाभारत
सीख लो उससे
बोलो
कि रूक जाय
आज का महाभारत

2. नहीं पहुँची

भावों से भरा दिल
अंजुलियों से उलीचते-उलीचते भी
खाली नहीं हुआ
न थकी अंगुलियाँ

प्रेम की बाढ़ ने
सबको आप्लावित किया
अलबत्ता
तुम तक
एक बूँद भी
नहीं पहुँची।

3. झाँको

जिसे मानते रहे
पूरा सच, वह
सफेद झूठ भी
हो सकता है

समझते रहे जिसे
एकदम झूठ
हो सकता है कि वह
बिल्कुल सही हो

तुम्हीं नहीं हो सकते सही
हर बार
झाँको
अपना गिरेबां भी

4. मुतमईन बैठा था

उसने कहा, आगे बढ़ो
पीछे मुड़कर, मत देखो

कुछ दूर चलकर
आशंका हुई
देखा, पीछे मुड़कर

बहुत पीछे
मेरे हिस्से पर
कुंडली मारकर
वह, मुतमईन बैठा था।

5. सावधान ! ताक में हैं

हमारा प्रतिनिधि बनकर
जा पहुँचा जादुई महल में
सुन सकता है सारा जहाँ-जहाँ से
उनके मुँह हमारी बात

सुनो, जरा ध्यान से सुनो
किस मसले पर करते हैं बहस
कि उनके बोलने में खर्च होते हैं
भूख्खर देश के पैंतालीस करोड़ रूपए

देखो, जरा ध्यान से देखो
कि पैसे-पैसे को तरसते लोगों के पैसों का
कितना होता है सदुपयोग

गड़े मुर्दे उखाड़
सेंकते हैं स्वार्थ की रोटी
व्यक्तिगत इच्छाओं को
राष्ट्रीय साबित करने के इस
सबसे कठिन दौर में
देश से अधिक पार्टियों की चिंता करने वाले को
पहचानो, पहचानो दोस्त !

परखो फतवों की हकीकत
सोचो कुछ भी करने से पहले
धर्म इंसान के लिए बना है या
धर्म के लिए इंसान ?

सावधान !
ताक में हैं, निष्ठा के सौदागर

देवेन्द्र सौरभ

हिन्दी भाषा की विकास यात्रा

डॉ. दीपक कुमार लाल
गारलेस्टन, ग्रेट यरमौथ, ईंगलैंड

'हिन्दी' जिस भाषा-धारा के विशिष्ट दैशिक और कालिक रूप का नाम है, भारत में उसका प्राचीनतम रूप संस्कृत है। संस्कृतकालीन बोलचाल की भाषा विकसित होते-होते 500 ई. पूर्व के बाद प्रवृत्तितः काफी बदल गई, जिसे ''पालि'' की संज्ञा दी गयी है। इस काल में क्षेत्रीय बोलियों की संख्या चार हो गयी थी : पश्चिमोत्तरी, मध्यदेशी, पूर्वी और दक्षिणी। पहली ईसवी तक आते-आते यह बोलचाल की भाषा का काल मोटे रूप से 500 ई. से 1000 ई. है। हिन्दी भाषा का उद्‌भव अपभ्रंश के शौरसेनी (पश्चिमी हिन्दी, उड़िया, असमिया) रूपों से हुआ। शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से खड़ीबोली का उद्‌भव हुआ। लोक साहित्य की दृष्टि से खड़ीबोली बहुत ही संपन्न हैं। 'हिन्दी' शब्द का संबंध संस्कृत शब्द 'सिन्धु' से माना जाता है। यह 'सिन्धु' शब्द ईरानी में जाकर 'हिन्दू' और फिर 'हिन्द' हो गया जिसका अर्थ सिन्ध प्रदेश था जो धीरे-धीरे पूरे भारत का वाचक हो गया। इसी में ईरानी का 'ईक' प्रत्यय लगने से 'हिन्दीक' बना, जिसका अर्थ है 'हिन्द का' इसे युनानियों ने 'हिन्दीक' कहा और 'हिन्दीक' का ही विकसित व परिवर्तित रूप 'हिन्दी' हुआ।

कतिपय आचार्यों नें हिन्दी भाषा का वास्तविक आरंभ 1000 ई. से माना है। भाषा के विकास की दृष्टि से इसे तीन कालों में बाँटा जा सकता है - आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल।

आदिकाल (1000 ई. से 1500 ई.) :- हिन्दी भाषा अपने आदिकाल में अपभ्रंश के बहुत अधिक निकट थी, क्योंकि उसी से हिन्दी का उद्‌भव हुआ था। अपभ्रंश में केवल आठ स्वर थे - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ। आदिकाल में दो नए स्वर विकसित हुए - ऐ, औ। अपभ्रंश में ड़, ढ़ व्यंजन नहीं थे। आदिकाल में इसका विकास हुआ। भक्ति आन्दोलन तथा इस्लामी शासन के परिणामस्वरूप तत्सम शब्दावली तो बढ़ी ही फारसी तथा तुर्की भाषा के शब्दों की भी हिन्दी में आधिक्यता हुई। इस काल के साहित्य में प्रमुखतः डिंगल, मैथिली, अवधी, ब्रज तथा मिश्रित रूपों का प्रयोग मिलता है। इस युग के प्रमुख हिन्दी साहित्यकार-गोरखनाथ, विद्यापति, चन्दवरदायी, कबीर आदि है।

मध्यकाल (1500 ई. से 1800 ई.) :- इस काल में ध्वनि, व्याकरण तथा शब्द भंडार के क्षेत्र में काफी परिवर्तन हुए। शब्दान्त का 'अ' कम से कम मूल व्यंजन के बाद आने पर लुप्त हो गया। जैसे - 'राम' का उच्चारण राम् होने लगा। किन्तु 'भक्त' जैसे शब्दों में जहाँ अ के पूर्व संयुक्त व्यंजन था - 'अ' बना ही रहा। इसकाल में हिन्दी भाषा व्याकरण के क्षेत्र में पूरी तरह अपने पैरों पर खड़ी हो गयी। यूरोप से संपर्क होने के कारण कुछ पुर्तगाली, स्पेनी, फ्रांसीसी तथा अंग्रेजी शब्द भी हिन्दी में आ गये। इस काल में धर्म की प्रधानता रहने के कारण, अवधी और ब्रज भाषा में साहित्य विशेष रूप से रचा गया। इस काल के प्रमुख साहित्यकार जायसी, सूर, मीरा, तुलसी, केशव, बिहारी भूषण आदि है।

आधुनिक काल (1800 ई. से अब तक) :- आधुनिक काल में बंधे हुए कथ्य, अलंकृति, शैली और रस के घाट टूट गये तथा जीवन की धारा विविध श्रोतों में फूट निकली। साहित्य मनुष्य के बृहत्तर सुख-दुख के साथ पहली बार जुड़ा। धर्म, दर्शन, साहित्य, चित्र आदि सभी के प्रति नये दृष्टिकोण का आविर्भाव हुआ। संक्षेप में, आधुनिक काल के उपविभाजन का प्रारूप निम्नलिखित ठंग से प्रस्तुत किया जा सकता है -

1.	पुनर्जागरण-काल (भारतेन्दु काल)	1857 ई - 1900 ई.
2.	जागरण-सुधार काल (द्विवेदी काल)	1900 ई. - 1918 ई.
3.	छायावाद-काल	1918 ई. - 1938 ई.
4.	प्रगति काल	1938 ई. - 1953 ई.
5.	नवलेखन व प्रयोग काल	1953 ई. से चल रहा है।

हिन्दी का पश्चिमीकरण :- कलकत्ता विदेशी व्यापारियों का केन्द्र था, फलतः अंग्रेजी-शिक्षा प्राप्त लोगों को व्यावसायिक फर्मो और प्रशासकीय दफ्तरों में नौकरी पाने की सुविधा थी। सामान्यतः उत्साही व्यक्तियों की दृष्टि में रोजी-रोटी का सवाल ही प्रमुख था। प्राच्य विद्या के विद्यार्थियों की छात्रवृति समाप्त कर दी गई। अंग्रेजी भाषा माध्यम के रूप में स्वीकार कर ली गई।

ब्रिटिश राज्य की स्थापना के पूर्व ईसाईमिशन दक्षिण भारत में धर्म प्रचार के कार्य में लगे हुए थे जो इस कार्य को अंग्रेजी शिक्षा द्वारा करना चाहते थे, इस बहाने अंग्रेजी शिक्षा देने वाले बहुत से स्कूल-कॉलेज खुल गये। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने शिक्षा के क्षेत्र में विशेष कार्य नहीं किया। किन्तु लोक-शिक्षा के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिए कलकत्ता में एक शिक्षा-समिति संगठित की। इस समिति के सदस्यों में कुछ तो प्राच्य-भाषाओं के समर्थक थे और कुछ अंग्रेजी शिक्षा के। फलस्वरूप प्राच्य शिक्षा विरोधियों को काफी बल मिला, किन्तु प्रेस की स्वतंत्रता को लेकर प्रारंभ से ही अंग्रेजों और भारत वासियों में टकराहट रही। इस संघर्ष में राजाराम मोहन राय ने पहल की : समाप्त की हुई प्रेस की स्वतंत्रता 1818 ई. को हेंस्टिंग्स ने इस प्रतिबंधों को हटाकर स्वतंत्रता प्रदान की।

प्रेस-मुद्रण का माध्यम ही हिन्दी साहित्यकार को अवसर दिया कि वह बहुत-कुछ व्यक्तिगत भी अभिव्यक्त कर सके। आज के साहित्य में जो वैविध्य, वैयक्तिक कल्पना-छवियाँ, बौद्धिकता और प्रयोगात्मकता आयी है इसका दायित्व प्रेस-मुद्रण पर भी है।

आज हिन्दी साहित्य में जीवन-वास्तव की प्रखर चेतनात्मक अभिव्यक्ति मिलती है। आज का साहित्य नयी अभिव्यक्तियों तथा नयी शैलियों, नया जीवन-बोध, समस्त सर्जनात्मक गतिविधि के नये रूप और प्रतिमान भी लाता है। आज नवीन उद्‌भावनाओं और प्रेरणाओं से हिन्दी गद्य में सर्वथा नयी-प्रवृतियाँ प्रकट हो रही हैं। नाटक और कथा की समीक्षा पहले शास्त्रीय अध्ययनों के घेरे में चक्कर काट रही थी। किन्तु आज उस घेरे को तोड़कर नयी कथा-समीक्षा और नाट्य-समीक्षा विकसित हो रही है। आज का गद्य और पद्य उदात्त, महान, आर्दश, उच्च भावनाओं तक ही परिसीमित नहीं रहा। वह अपनी परिधि में जन साधारण की भाव-दशाओं, आकांक्षाओं, प्रेरणाओं और प्रश्नाकुल समस्याओं का चित्रण भी अनिवार्य मानकर करता है। समसामयिक चिन्तन-धाराओं, इतिहास की नई हलचलों ने अपनी रगड़ से जितना इधर के रचनाकार को बौखलाया है उतना पहले कभी नहीं। परिवेश, परम्परा, जातीय इतिहास, प्रेस, गाँव, घर, संस्कार, सपने, वर्गीय-चारित्रिक मनः स्थितियाँ सब मिलकर रचनाकार को रौंदती दिखाई देती है - उसकी सज्जनता और मानवीयता उसे और उसके साहित्य समाज को डबडबायी आँखों से घूर रही है कि कोई आज भी दधीचि बनो और राक्षसों का संहार करो।

आज के रचनाकार कथ्य में अपने 'परिवेश' को ही रचकर खुश हैं - वह आप मिथकों को छूता तक नहीं है, जिनसे जिन्दगी के बृहत्तर अर्थ-सन्दर्भो को उजागर किया जा सकता है। इन्हें कल के साहित्य को इतिहास में लाने के लिए पहचान शक्ति बढ़ानी होगी। हालांकि हिन्दी अपनी पहचान विश्व में इतनी बना ली है कि उसे धुंधलाना टेढ़ी खीर हैं। शब्दकोष में हिन्दी का पहले से दस गुणा अधिक शब्द निर्माण हो चुका है। अध्ययन-अध्यापन में हिन्दी विश्वविद्यालय में प्रतियोगिता क्षेत्र में भी जगह बनाते जा रही है। इस पूरे दौर में ऐसे रचनाकारों को आगे आना होगा जो परिवर्तनशील सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनीतिक-आर्थिक, नैतिक-धार्मिक शक्तियों की समझ का गहरा प्रमाण दे सके। आज की उपभोक्तावादी-संस्कृति बेरहमी से मानवतावादी मूल्यों और भारतीय संस्कारों का सिलसिलेवार ढंग से संहार कर रही है। ऐसी स्थिति में कल इतिहास में आने के लिए आज के रचनाकारों को निर्भयता से जीवन के फैलाव, सामाजिक-आर्थिक विषमता, विद्रूपता, मूल्यहीनता तथा भ्रष्टाचार को लेखन के विषय-क्षेत्र में लाना होगा।

समाधान

डॉ0 आर0 के0 शर्मा
भागलपुर

किसी गाँव में एक बूढ़ा व्यक्ति था। उसकी दो बेटियाँ थीं। उसने बड़ी बेटी की शादी मिट्टी का काम करने वाले कुम्हार से की, तो छोटी की एक किसान से। एक बार पिता अपनी बेटियों से मिलने निकला। पहले वह बड़ी बेटी से मिला तो उसने बताया कि हमने मेहनत करके मिट्टी का खूब सारा समान बनाया है। अगर बारिश न हो तो, खूब फायदा होगा। उसने पिता से कहा कि वह भगवान से प्रार्थना करें कि बारिश न हो। अब वह छोटी बेटी के घर पहुँचा। छोटी ने कहा - हमने बहुत मेहनत करके खेती की है। बस बारिश हो जाए, तो खूब फसल होगी। उसने पिता से कहा कि वह ईश्वर से प्रार्थना करें खूब बारिश हो। पिता असमंजस में पड़ गया। एक के लिए प्रार्थना करता है, तो वह दूसरी बेटी के खिलाफ जाएगी। उसने एक युक्ति निकाली। वह अगले दिन फिर अपनी बेटियों के घर गया। उसने बड़ी बेटी को समझाया कि यदि बारिश नहीं होती है, तो तुम अपनी आय का आधा हिस्सा छोटी बहन को दे देना। फिर उसने छोटी बेटी के घर जाकर उससे वचन लिया कि यदि बारिश होती है तो तुम अपनी बड़ी बहन को अपनी आय को आधा हिस्सा दे देना। दोनों बेटियाँ इस बात पर सहमत हो गईं।

कथा मर्म : समस्या का समाधान बौद्धिक चातुर्यता दर्शाता है।

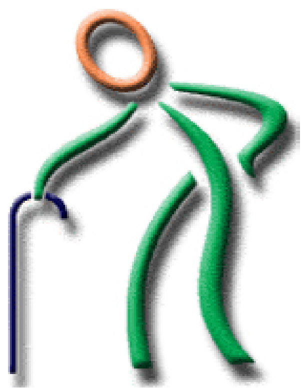

जब तक भोग है, तबतक योग का अनुभव नहीं होता है। भोग का सर्वथा त्याग होने पर ही योग का अनुभव होता है।

महाकवि : डॉ0 विजय कुमार मेहता

अशोक कुमार झा
प्राचार्य
राजकीय जिला स्कूल, भागलपुर

''जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादऽपि गरीयसी'' के उपासक, भारतीय संस्कृति एवं गरिमा के पुजारी, भागलपुर निवासी ''डॉ. विजय कुमार मेहता'' हिन्दी में विशेष रूचि रखने वाले प्रतिभा के धनी चिकित्सक के रूप में व्यस्ततम शहर न्यूयार्क में रहकर भी हिन्दी काव्यों / महाकाव्यों की रचनाकर हिन्दी जगत में अपने क्षेत्र भागलपुर का परचम लहरा रहे हैं। इन्होंने प्राचीन लिच्छवी गणराज्य की उपलब्धियों से प्रेरित नृत्य-संगीत में पारंगत राजनर्तकी आम्रपाली को महात्मा बुद्ध के द्वारा परिव्रजा के रूप में अंगीकृत कथा से प्रभावित ''भिक्षुणी'' महाकाव्य की अप्रतिभ रचनाकर कवियों के सिरमौर ही नहीं बल्कि इस क्षेत्र भागलपुर का नाम भी रौशन किये।

महाकाव्य की रचना मनुष्य को विफल करनेवाली अनेक भाव-धाराओं के बीच सामंजस्य लाने का प्रयास है तथा परस्पर विरोधी प्रश्नों के समाधान की चेष्टा है। महाकाव्य तभी लिखा जाता है जब युग की अनेक विचार धाराएँ वेग से बहती हुई किसी महासमुद्र में मिलना चाहती है। जब ऐसी अनेक धाराएँ वेगवन्त प्रवाह में होती हैं, तभी महाकाव्य की रचना का समय आता है और जो कवि अनेक महामिलन के लिए सागर का निर्माण कर सकता है वही महाकाव्य लिख सकता है।

डॉ. विजय कुमार मेहता ने ''भिक्षुणी'' महाकाव्य लिखकर शीतल जल से पूर्ण एक ऐसा जलाशय का निर्माण किया है जो सूखना नहीं जानता और जिसके घाट पर अनेक युगों के लोग अपनी प्यास बुझा सकेंगे। उस जलाशय में अनेक युगों की आत्माओं की तृप्ति के लिए यथेष्ट जल भर दिये हैं। मेहताजी के व्यक्तित्व में हम एक नवजागरण की आभा पाते हैं और यह आभा हमारे मन को जो कुछ दिलाती है, वह प्रधानतः धर्म और भक्ति का श्रृंग है, वह आत्मा की उपासना का मंदिर और हृदय की आकुल भावनाओं का ताल है, जिसपर छाये हुए सेंवार को उन्होंने दूर करने की कोशिश की है। जहाँ विश्व की अगणित कुरूप पीड़ाएँ, उन्हें इस रूप में ललकार रहीं थीं, वहाँ उनके हृदय के निभृत कोने में एक प्रबल आध्यात्मिक विश्वास भी आसन जमाए बैठा था, जो उनके भीतर के मनुष्य को समाज की उलझनों से दूर रखकर हम पाठकों के लिए तैयार कर रहा था। स्मृति का दर्शन, सौन्दर्य की चोट, किसी अस्पष्ट उमंग की लहर अथवा मन का कोई धुंधला आवेग, ऐसी कोई भी बात कवि के भीतर एक प्रकार की मनोदशा को उत्पन्न करती है जिसकी अभिव्यक्ति शब्दों की ताकत के बल पर नहीं की जा सकती, बल्कि धूप की चाँदनी में बदलने की ख्वाहिश, मध्याह्न के जलते हुए आकाश को सांध्य सूर्य के गैरिक वसन से ढँक देने की चाह तथा कोलाहल से भरे विश्व को शांति की शुभ्र चादर से आवृत कर देने की कामना हो। मैंने देखा कि इस 'भिक्षुणी' महाकाव्य को पढ़ने तथा समझने के लिए उन सभी विद्याओं का कुछ न कुछ परिचय आवश्यक है जो मनुष्य को अतीत से विरासत के रूप में मिली है अथवा जिनका वह शनैः-शनैः निर्माण कर रहा है। तीन सौ बहत्तर पृष्ठों का यह विशाल काव्य ऐसा है जिसके भीतर उस पुरूष का चिन्तन विराजमान है जिसमें पूर्व और पश्चिम की सभी विधाओं को अपने भीतर आत्मशात कर लिया है तथा जिसने लोक और परलोक को एकाकार करने के लिए अनुपम प्रयास किया है।

जड़तावादी कहते हैं कि दिव्य जीवन की कल्पना निरी कल्पना ही है। वह कभी पूरी नहीं होगी। अतएव जबतक जीवित हो, पृथ्वी को स्वर्ग मानकर जियो और इसके आनन्दों का उपभोग करो। बैरागी कहते हैं कि यह पृथ्वी स्वर्ग बन ही नहीं सकती। स्वर्ग तो तब मिलेगा, जब हम मिट्टी के घेरे से बाहर चले जायेंगे, मगर इन दो विरोधी समाधानों के होते हुए भी जीवन के अन्तराल में एक अनवरत प्रवाह चल रहा है कि हमें इसी जीवन में स्वर्ग चाहिए जिसे पकड़कर हम अपने साथ रख सकें। हम आत्मा की सत्ता की अपेक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि हमारे अस्तित्व की समस्त तिमिराच्छन्न धारा ही हमारी इस बात का खण्डन करती है कि विश्व में अन्तर्हित किसी सर्वव्यापी सत्य की सत्ता नहीं है। दूसरी ओर वैरागियों के आत्महनन की प्रक्रिया का भी हम समर्थन नहीं कर सकते, क्योंकि वह दुःखदायी और अत्यन्त कठोर मार्ग है, साथ ही, सफलता के बदले उससे हमें भयंकर परिणाम भी भोगने पड़ सकते हैं। इनमें से दोनों ही मार्ग एकांगी पाये गये हैं और मानवता किसी ऐसे मार्ग के लिए तड़पती रही है जिसमें समन्वय का गहरापुट हो, जिसमें भोग और वैराग्य, दोनों के लिए स्थान हो, जिसमें मिट्टी की गंध और आकाश की सुरभि का संतुलित योग हो तथा जो सत्य के किले तक खूब प्रशस्त होकर जा सके।

डॉ. विजय कुमार मेहता ने इस महाकाव्य के द्वारा मनुष्यता को व्यथित करने वाली इस युग व्यापिनी पीड़ा का जो निदान और समाधान दिया है, वह बड़ा ही विलक्षण है। वे मानते हैं कि आधुनिक जड़तावादी दृष्टिकोण ने जिज्ञासा से पीड़ित मनुष्य की अनेक शंकाओं का समाधान करके उसके जीवन के निचले स्तर-संबंधी ज्ञान का भंडार यथेष्ठ रूप से बढ़ा दिया है। इसी प्रकार वैरागियों की वृत्ति ने मनुष्य को संसार के मोह से मुक्त होकर अज्ञात की खोज में निकल पड़ने का साहस प्रदान किया एवं आत्मा की सतह की झांकी लेने में उसकी सहायता की। किन्तु ये दोनों ही मार्ग सीमित और अपूर्ण हैं। सच तो यह है कि आत्मा का स्वतंत्र होकर फैलने का दावा उतना ही उचित है, जितना द्रव्य का यह आग्रह कि वह इस प्रकार का साँचा और आधार बनेगा। अधिभौतिक

दृष्टिकोण और वैराग्य साधना, ये दोनों ही एक ही वास्तविकता के विरोधी पहलू हैं। किन्तु सर्वव्यापी सत्य तो वह है जो इस दोनों को अपने में समेट कर भी इन दोनों से बहुत आगे तक जाता है। इस ''भिक्षुणी'' महाकाव्य से कुछ संदेश हैं :-

''शुद्ध दृष्टि, संकल्प जीविका, उचित कर्म, शुभ मृदुवचन,
स्मृति विशुद्ध, पावन प्रयत्नरत, आलोकित अतिशुभ्र मनन।

x x x x

चार सत्य और अष्ट कर्म का, कर ले पावन अभिनन्दन,
यही सत्य है, यही ज्ञान है, बाँकी कुछ भी नहीं नमन।।

साधक और कवि की भाव दशा प्रायः एक होती है। जहाँ सत्य का निवास है, उस लोक में दोनों ही पहुँचते हैं, किन्तु साधक वहीं बैठ जाते हैं और कवि वहाँ से लौट कर अपनी अनुभूति का संवाद दुनिया को देने के लिए वापस आता रहता है। दोनों में कौन श्रेष्ठ है यह वे नहीं समझेंगे, जो हर जगह मैरिक वसन को प्रणाम तथा दाढ़ी का चुम्बन किया करते हैं। कवि शायद इसलिए तवाह है कि वह अपनी कमजोरियों, अपनी बेचैनियों और अपने उन्मादों का राज दुनिया वालों से नहीं छुपा सकता।

इतिहास प्रसिद्ध बैशाली नगरी के गणसंघ की राजधानी, उसकी समृद्धि, भव्यता एवं प्रभुता, बिम्बसार का मगध साम्राज्य, रहस्यमयी प्रख्यात परम सुन्दरी नृत्यांगना आम्रपाली सारे के सारे कभी के विनष्ट हो चुके। किन्तु डॉ. विजय कुमार मेहता ने तथागत की धार्मिक, राजनैतिक एवं सामाजिक परिधि के लिए अपने हृदय में जो महल बनाया था उसमें तो भिक्षुणी आम्रपाली, मगध सम्राट आज भी निवास कर रहे हैं।

तथागत बुद्ध ने धर्म की विज्ञान की गरिमा प्रदान की, उन्होंने एक भी शब्द ऐसा नहीं कहा जो विज्ञान की कसौटी पर खड़ा न उतरता हो, उनका वचन है कि पुरूष और नारी दोनों समान हैं, तथा मनुष्य की दो जातियाँ नहीं हो सकती, नारी को सन्यास लेने तथा पुरूषों के समान प्रवचन एवं ज्ञान संदेश का अधिकार है और यह अधिकार प्रत्येक नारी को है, भले ही उनका पिता व वंश अज्ञात हो अथवा वह गणिका हो। इन्होंने बौद्ध कालीन नारी के सामाजिक एवं सन्यासी जीवन को समाहित करते हुए उनकी शिक्षा प्रसाधन, धार्मिक प्रवृत्तियों तथा तत्कालीन समाज की संरचना में इनका स्थान एवं स्थिति का सजीव चित्रण किया है। इन्होंने बौद्ध कालीन भारत के इतिहास को आधार बनाकर, ऐतिहासिक तथ्यों के अतिरिक्त घटनाओं, परिस्थितियों तथा चरित्र का समावेश किया है। इनकी चित्रकारी और बिम्बयोजना कविता को खूबसूरत बनाती है, चित्र पारदर्शिता काव्य के भीतर से दूर की चीजें दिखाई दे रही है। इनके महाकाव्य ''भिक्षुणी'' की पंक्तियाँ उस गहरी अनुभूति का संधान कराती है जिसके ध्वनित होते ही वीणा के सभी तार झंकृत हो उठते हैं, हमारी चेतना के रंग प्रकाश और शक्ति को आन्दोलित कर देती है, कहीं-कहीं पाठक को उस अवस्था में छोड़ देती है, जहाँ उसे अपना निर्णय आप करना होता है। विश्रृंखला के चित्रण में भी किसी श्रृंखला का संकेत देती है, निराशा की आवाज होने पर भी आशा के संधान की राह बताती है।

संस्कृति के विघटन-दृश्य को कवि तटस्थ होकर नहीं देखते, उसके हर अंश को बचाना चाहते हैं जो रक्षणीय है। प्रतीकवाद, अभिव्यञ्जनावाद और चित्रवाद की शैली की समृद्धि में भी वृद्धि है। शैली विचार की त्वचा होती है। जहाँ विचार नहीं वहाँ कोई भी शैली काम नहीं करगी। इनमें राष्ट्र प्रेम, समाज प्रेम तथा बुद्ध सम्बन्धी पौराणिक आख्याओं की संस्कृति प्रधान विचार पलते हैं। कवि ने अपनी रचनाओं में आज के युग की समस्त चेतनाओं, मान्यताओं और समस्याओं का प्रतिनिधित्व किया है। इनके काव्य में सामाजिक जीवन के लक्ष्यों का निरूपण है, राष्ट्रीय विचारों के सौन्दर्य की झलक है। विश्व के अन्य काव्यकारों की भाँति इनके काव्यों में प्रकृति चित्रण को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। मनुष्य के हृदय पर प्रकृति के सौन्दर्य का चिरस्थाई प्रभाव पड़ता है। सावन और भादों के काले-काले बादल, बसन्त की हरीतिमा, शरद पूर्णिमा का दुग्ध-धवल ज्योत्सना, पके-पकाये गेहूँ के स्वर्णिम खेत और उनमें क्रीडा संलग्न विभिन्न पक्षियों को देखकर सभी भावुक हृदय प्रसन्न हो उठते हैं। कवि की वाणी भी अपनी सुन्दर भाषा में प्रकृति की चिर-सुषमा को आकाश, सूर्य, तारागण, मेध, बिजली, द्रुमलताएँ, पशु-पक्षी, उषा की अरूणिमा, जलाशय, इन्द्रधनुष, ओस बिन्दु, लहराते खेत, हरियाली की उन्मत्त लहरों को देखकर पात्रों को संघर्षमय जीवन के क्षणों में विश्राम दिलायी है। जिससे आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा और नई शक्ति प्राप्त हुई। पाठक की आत्मा आनन्द विभोर हो जाती है। प्रकृति निरूपण क्षेत्र में कवि कभी दार्शनिक बन जाते हैं तो कभी भावुक। फलतः प्रकृति और मानव का तादात्मय हो जाता है।

''नव प्रभा की प्रभंजन पुरवा रस,
लिए अंक में सजल शीत रस,
किस कानन की गलियाँ से आई यहाँ,
चुराये सुमन के परिमल मधु-कलश,
मंद-मंथर प्रवाहित मलय के पवन,
ढल रही यामिनी अब तो खोलो नयन।

इस महाकाव्य में परिवर्तनशील पुकार तथा पद्दलित, परवश को स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए जागरण का महान उद्घोष है। इनकी रचनाओं में प्राचीन आर्य सभ्यता और संस्कृति की मधुर झंकार है। काव्यों के भाव पक्ष के साथ-साथ कला का सहज सौन्दर्य है। इनके नायक और नायिका के सामने अनेक विध्न-बाधाएँ आई किन्तु उन्हें न गिनते हुए वे अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते चले गये, अन्त में उनकी निश्चित विजय हुई। पाठक के हृदय पर इसका प्रभाव यह पड़ता है कि सत्य की असत्य पर विजय होती है। ऐसे सत् काव्यों के अध्ययन से मनुष्य का हृदय पवित्र होने लगता है।

अप्रैल, 2013
(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)
संभाव्य
हिंदी त्रैमासिक
www.sambhavya.com
www.sambhavya.com
fastprint#9430088362
फास्ट PRINT
Quality in time